ओ३म्

सत्यापन क्रमांक : RAJHIN/2015/60530

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

हिन्दी मासिक

वर्ष : २ अंक : २२ १ अक्टूबर २०१६ जोधपुर (राज.) पृ.:३६ मूल्य १५० र वार्षिक

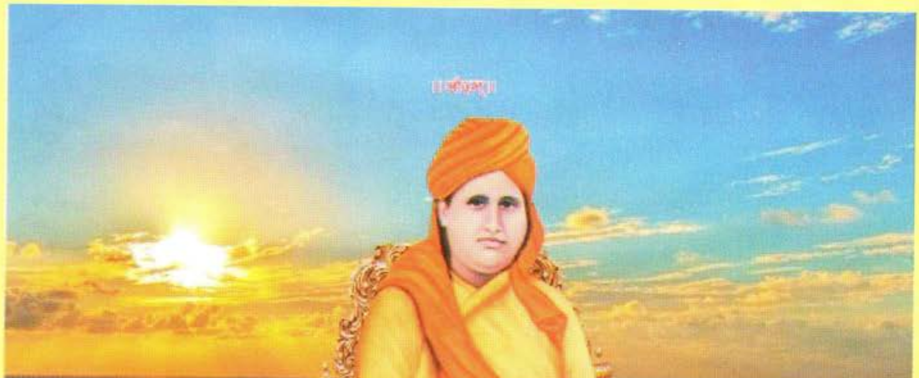

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास

जसवन्त कॉलेज के पास, मोहनपुरा, जोधपुर (राजस्थान)

फोन : 0291-2516655

दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास जोधपुर में
133 वॉ वार्षिक ऋषि स्मृति सम्मेलन सम्पन्न की प्रमुख झलकियां

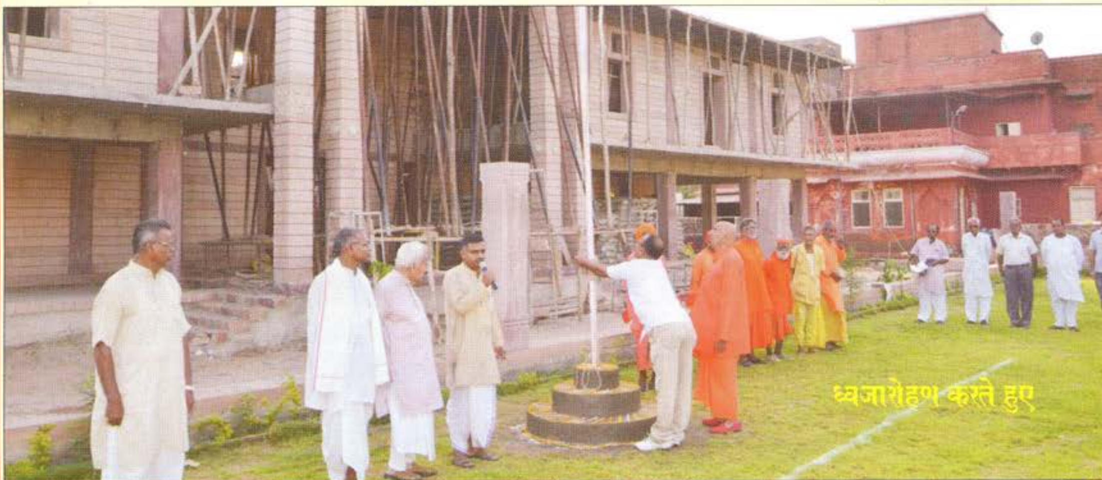

ध्वजारोहण करते हुए

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । -ऋग्वेद ९।६३।५

विश्व को श्रेष्ठ बनाओ

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश का मुख्य प्रयोजन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व, कृतित्व, व उनके द्वारा लिखित समस्त साहित्य तथा उनके सार्वभौमिक अद्वितीय कार्यों व सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार स्थापना व व्यवहार में साकार करने के लिये कार्य करना ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर का मुखपत्र

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

वर्ष : २ अंक : २१

दयानन्दाब्द : १९२

विक्रम संवत् : कार्तिक

कलि संवत् ५११७

सृष्टि संवत् :१,९६,०८,५३,११७

मार्गदर्शक :

पं. सत्यानन्दजी वेदवागीश

प्रकाशक :

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जसवन्त कॉलेज के पास, जोधपुर ३४२००१

सम्पादक मण्डल :

पं. सत्यानन्दजी वेदवागीश, जोधपुर

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर

डॉ. धर्मवीर, अजमेर

डॉ. सुरेन्द्रकुमार, हरिद्वार

डॉ. वेदपालजी, मेरठ

पं. रामनारायण शास्त्री, सिरोही

आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है । किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र जोधपुर ही होगा ।

mail i.d.: info@dayanandsmritinyas.org.

www.dayanadsmritinyas.org.

वार्षिक शुल्क :१५० रुपये

आजीवन शुल्क : ११०० रुपये (१५वर्ष)

अनुक्रमणिका

	क्या	कहाँ
१.	ईश्वर-स्तुति....	४
२.	वेद मन्त्र	५
३	जय हो उसकी...	७
४.	वर्तमान युग में वेदों के..........	८
५.	आओ अपने घर चले..........	११
६.	आर्यसमाज के स्वर्णिम सिद्धान्त.......	१६
७.	देश की पुकार.....	१९
८.	शारदीय नवसस्येष्टि : दीपावली	२४
९.	ऋषि स्मृति सम्मेलन सम्पन्न	२९
१०.	दयानन्द बावनी...	३१

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास

बैंक ऑफ बडौदा खाता संख्या-01360100028646

IFSC BARB0JODHPU

यह पांचवा अक्षर जीरो है

ईश्वर-स्तुति

प्रार्थना

सोम ररन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा ।

मर्यइव स्व ओक्ये ।।३७।। ऋ. १।६।२१।१३

व्याख्यान- हे "**सोम**" सोम्य ! सौक्ष्यप्रदेश्वर ! आप कृपा करके "**ररन्धि, नः हृदि**" हमारे हृदय में यथावत् रमण करो । (दृष्टान्त) जैसे "**गावः न यवसेषु आ**" सूर्य की किरण, विद्वानों का मन और गाय पशु अपने-अपने विषय और घासादि में रमण करते हैं वा जैसे "**मर्यः इव, स्वे, ओक्ये**" मनुष्य अपने घर में रमण करता है, वैसे ही आप सदा स्वप्रकाशयुक्त हमारे हृदय(आत्मा) में रमण कीजिए, जिससे हमको यथार्थ सर्वज्ञान और आनन्द हो ।।३७।।

गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः ।

सुमित्रः सोम नो भव ।।३८।। ऋ. १।६।२१।१२

व्याख्यान-हे परमात्मभक्त जीवो ! अपना इष्ट जो परमेश्वर, सो "**गयस्फानः**" प्रजा, धन जनपद और स्वराज्य का बढ़ानेवाला है, तथा "**अमीवहा**" शरीर, इन्द्रियजन्य और मानस रोगों का हनन (विनास) करने वाला है । "**वसुवित्**" पृथिव्यादि सब वसुओं का जाननेवाला है, अर्थात् सर्वज्ञ और विद्यादि धन का दाता है, "**पुष्टिवर्धनः**" हमारेशरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा की पुष्टि को बढ़ाने वाला है । "**सुमित्रः, सोम, नः, भव**" सुष्ठु, सबका यथावत् परममित्र वही है, सो अपन उससे यह माँगं कि हे सोम ! सर्वजगदुत्पादक ! आप ही कृपा करके हमारे सुमित्र हों और हम भी सब जीवों के मित्र हों तथा अत्यन्त मित्रता आपसे ही रक्खें ।।३८।।

-आर्याभिविनय से

चतुर्थवेद शतकम से

वेद-मन्त्र

जल से रोग-निवृत्ति

अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये ।

देवा भवत वाजिनः ।। -१।२३।१९

पदार्थः-हे (देवाः) विद्वानो ! तुम (प्रशस्तये) अपनी उत्तमता के लिए (अप्सु) जलों के (अन्तः) भीतर जो (अमृतम्) मार डालने वाले रोग का निवारण करने वाला अमृतरूप रस (उत) तथा (अप्सु) जलों में (भेषजम्) औषध हैं, उनको जानकर (अपाम्) उन जलों की क्रिया-कुशलता से (वाजिनः) उत्तम=श्रेष्ठ ज्ञानवाले (भवत) हो जाओ ।

भावार्थः-हे मनुष्यो ! तुम अमृतरूपी रस वा औषधवाले जलों से शिल्प और वैद्यक शास्त्र की विद्या से उनके गुणों को जानकर कार्य की सिद्धि वा सब रोगों की निवृत्ति नित्य किया करो ।

माता-पिता की सेवा

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् ।

स्वधा स्था तर्पयत् मे पितृत् ।। -२।३४

पदार्थः-हे पुत्रादिको ! तुम (मे) मेरे (पितृन्) पितरों को (ऊर्जम्) अनेक प्रकार के उत्तम-उत्तम रस (वहन्तीः) सुख प्राप्त करानेवाले स्वादिष्ट जल (अमृतम्) सब रोगों को दूर करनेवाली ओषधि, मिष्ठादि पदार्थ (पयः) दूध (घृतम्) घी (कीलालम्) उत्तम-उत्तम रीति से पकाया हुआ अन्न तथा (परिस्रुतम्) रस से चूते हुए पके फलों को देके (तर्पयत) तृप्त करो । इस प्रकार तुम उनकी सेवा से विद्या को प्राप्त होकर (स्वधा) परधन का त्याग करके अपने धन का सेवन करने वाले (स्थ) होओ ।

भावार्थः-ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को पुत्र और नौकर आदि को आज्ञा देके कहना चाहिए कि तुमको हमारे पितर अर्थात् पिता-माता आदि वा विद्या के देने वाले प्रीति से सेवा करने योग्य हैं । जैसे उन्होंने बाल्यावस्था वा विद्यादान के समय हम और तुम पाले हैं, वैसे हम लोगों को भी वे सब काल में सत्कार करने योग्य हैं, जिससे हम लोगों में विद्या का नाश और कृतघ्नता आदि दोष कभी प्राप्त न हो ।

प्रातः सायं प्रभु-उपासना

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।

नमो भरन्त एमसि ।।१४।।

पदार्थः- (अग्ने) मार्गदर्शक ! परमात्मन् ! (वयम्) हम लोग (धियो) मन से (नमः भरन्तः) नमस्कार लिये हुए (दिवेदिवे) प्रतिदिन (दोषावस्तः) सायं और प्रातः (त्वा) आपकी (उप एमसि) उपासना करें ।

भावार्थः-इस मन्त्र में प्रातः सायं नित्यप्रति मनुष्य मात्र को परमात्मा की उपासना मन लगाकर करने की शिक्षा दी गई है-ब्रह्मयज्ञ, सन्ध्योपासना के अनुष्ठान का समय बताया गया है । दोषा रात्रि और वस्त दिन को कहते हैं । सो जिन गृहाश्रमी आदि मनुष्यों से अन्य कार्यों के वश समस्त दिन-रात्रि में उपासना नहीं हो सकती, क्योंकि वेद ने उन-उन आश्रमों के अन्य कर्त्तव्य भी बतलाये हैं, जिनका करना भी आवश्यक है और समय चाहता है, इसलिए रात्रि-दिन के अर्थ में संकोच विवक्षित समझकर प्रातः-सायं समझना ठीक है ।

प्रकाशमान बन और प्रकाश फैला

समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु,

संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या ।

सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा,

आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ।। -२।६।१

पदार्थः-(अग्ने) हे अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् ! (समाः) अनुकूल (ऋतवः) ऋतुएँ और (ऋषयः) ऋषि लोग और (यानि) जो (सत्या=सत्यानि तानि) सत्य कर्म हें 'वे सब' (त्वा) तुझको (वर्धयन्तु) बढ़ावें । (दिव्येन) अपनी दिव्य वा मनोहर (रोचनेन) झलक से (सम्) भले प्रकार (दीदिहि) प्रकाशमान् हो और (विश्वाः) सब (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) महादिशाओं को (आभाहि) प्रकाशमान् कर ।

भावार्थः-मनुष्य बड़े प्रयत्न और यथावत् उपयोग से अपने समय को अनुकूल बनावें । ऋषि तथा आप्त-पुरुषों से मिलकर उत्तम शिक्षा प्राप्त करें और सदा सत्य-संकल्पी, सत्यवादी और सत्कर्मी रहें । इस प्रकार संसार में उन्नति करें और कीर्तिमान् होकर प्रसन्नचित्त रहें ।

जय हो उसकी

-डॉ.रामनाथ वेदालंकार

महाँ इन्द्रः परश्च नु, महित्वमस्तु तज्त्रिणे।
द्यौर्न प्रथिना शवः।। ऋग् १. .५

ऋषि: **मधुच्छन्दा वैश्वमित्रः।** देवता **इन्द्रः।** छन्दः **गायत्री।**

(इन्द्रः) ऐश्वर्यशाली परमेश्वर **(महान्)** महान्[है], **(च)** और **(नु)** निश्चय ही **(परः)** सर्वोत्कृष्ट [है] **(वज्त्रिणे)** [उस]वज्रधारी का **(महित्व)** महत्त्व, जयजयकार **(अस्तु)** हो। [उसका] **(शवः)** बल **(प्रथिना)** विस्तार और यश से **(द्यौः न)** द्युलोक के समान [है]।

भाइयो ! क्या तुम विश्व-सम्राट् इन्द्र का परिचय जानना चाहते हो ? सुनो, वेद उसका परिचय दे रहा है। इन्द्र महान् है, महामहिम है, इस जगतीतल के बड़े-से-बड़े महिमाशालियों से भी अधिक महिमाशाली है। उसकी महिमा के सम्मुख सूर्य, चाँद, सितारे, नदी, पर्वत, सागर, चक्षु, श्रोत्र, वाक्, मन सब तुच्छ हैं। वह 'पर' है, परम है, सर्वोत्कृष्ट है, इसीलिए परमात्मा, परात्मा, परमेश्वर, परमदेव, परात्पर आदि नामों से स्मरण किया जाता है। सर्वोत्कृष्ट होने के कारण ही वह संसार में सबसे अधिक स्पृहणीय है, क्योंकि जो वस्तु जितनी अधिक उत्कृष्ट है, उसे हम उतना ही अधिक पाना चाहते है। निकृष्ट या घटिया वस्तु हमारे मन को नहीं भाती। इन्द्र-प्रभु परमोत्कृष्ट होने के कारण हमारा मन-भाव न होने योग्य है, हमारी अभीप्सा का पात्र होने योग्य है।

उसके बल, विस्तार और यश का हम क्या बखान करें ! कोई सांसारिक वस्तु उसका उपमान नहीं बन सकती, क्योंकि उपमान उपमेय से उत्कृष्ट हुआ करता है, जबकि संसार की कोई वस्तु किसी गुण में उससे उत्कृष्ट नहीं है। फिर भी परस्पर समझने और समझाने के लिए हम कह सकते हैं कि इन्द्र के बल का विस्तार और यश, द्युलोक के समान है। ज्यों ही हम द्युलोक के बल पर दृष्टि डालते हैं, हमारी आँखें चौंधिया जाती है। देखो, द्युलोक के सूर्य को देखो ! सूर्य का बल इतना व्यापक है कि उसने ग्रहोपग्रहों सहित हमारे सारे सौरमंडल को अपनी आकर्षणशक्ति रूप डोर से बाँध रखा है। उसने अपने प्रकाश से सबको प्रकाशित कर रखा है, अन्यथा हमारी भूमि और अन्य ग्रहोपग्रह सब चिर अन्धकार में विलीन हो जाएँ। सूर्य तो द्युलोक का एक सदस्यमात्र है। द्युलोक में अन्य अनेक नक्षत्र-पुंज भी हैं, जिनके बल,विस्तार और यश के आगे तो हमारी बुद्धि चकरा जाती है। वे सब अपने-आपमें एक-एक सूर्य हैं और वैज्ञानिकों का कथन है कि उनके भी अपने-अपने ग्रहोपग्रह हैं, जिनका वे संचालन और व्यावस्थापन करते हैं। तो, उस द्युलोक के समान विस्तीर्ण एवं यशस्वी इन्द्र का बल है।

वह इन्द्र वज्रधर भी है, पापात्माओं को उनके कर्मों के अनुरूप दण्ड देनेवाला है। यदि हम उसकी दण्ड-शक्ति का मन में ध्यान कर लें, तो जीवन में होने वाली सब उच्छृङ्खलताओं और अविवेकमय आचरणों से उद्धार पालें। आओ, महिमागान करें जगत् के उस परम यशस्वी सम्राट् इन्द्र का। आओ, जय-जयकार करें उस वज्रधारी का।

वर्तमान युग में
वेदों के उद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती

वेद ईश्वरीय वाणी है जो ऋषियों के माध्यम से मनुष्यों तक पहुँची है। जब प्रभु ने इस सृष्टि की रचना की और इसे चलाने के लिये एक संविधान बना कर मानव को दिया, जिसे 'वेद' कहते हैं। संसार में किस प्रकार रहना है? मानव को आज्ञा दी, यदि वेदानुसार चलेगा तो सुख पायेगा, नहीं तो दु:खों में फंस कर रह जायेगा।

रामायण व महाभारत काल में देखते हैं कि घर-घर में हवन यज्ञ तथा वेद पाठ होते थे। महाभारत युद्ध में जब अनेकों ही महारथी वेद पाठी विद्वान् मारे गये तथा कोई वेदज्ञ बचा नहीं। वेद पढ़ने पढ़ाने वालों का मानों अकाल-सा पड़ गया हो। यह शून्यता हजारों वर्षों तक रहीं। भारत की परिस्थितियाँ बदलती रही। राजे महाराजे आये और चले गये परन्तु वेदोद्धार की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। मध्यकाल में मुगलों का राज्य भी स्थापित रहा। वेद पाठ करना तो क्या हवन यज्ञ करने की परम्परा ही समाप्त हो गई। वेद पाठ बीते दिनों की बात बन कर रह गया, परन्तु किसी वस्तु का बीज नाश नहीं होता। वेद पाठ भले ही नहीं था। परन्तु बीज विद्यमान था। मुगलों के राज्य में भी गुरु साहिबान ने वेद की उच्चतम महिमा गाई थी। गुरु साहिबान संगत को उपदेश देते हुए कहते हैं- ''ओंकार वेद निर्मय'' अर्थात्- ईश्वर ने वेदों का निर्माण किया है। श्री गुरु तेग बहादुर जी कहते हैं-

''वेद विरुद्ध अधर्म जो, हम नाहिं करत पसंद, वेदोक्त गुरु धर्म जो, तीन लोग में चन्द।''

गुरु गोविन्द सिंह जी कहते हैं- ब्रह्मा ने चारों वेद बनाये, मानव हित शुभ कर्म बनाये। पं. केशव दास जी यज्ञ के ब्रह्मा बने तथा गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज ने यज्ञमान बन कर नैना देवी के मन्दिर में सवा लाख दमड़े की सामग्री, घी आदि खरीद कर हवन यज्ञ किया जो कि कई दिनों तक चलता रहा। गुरु साहिबान ने किसी भी परिस्थिति में वेद का त्याग नहीं किया। परन्तु मुगलों का मजहवी जनून भी चरम सीमा पर था। इस्लाम के अतिरिक्त किसी भी मत का साँस लेना मुश्किल था। वेद ज्ञान को तो लोग लगभग भूल ही गये थे। सदियों तक वेद अंधेरे में पड़े रहे। उन पर धूल मिट्टी पड़ती रही।

समय पाकर वेद धीरे-धीरे अलोप हो गये तथा नये नये मत जैसे सिख मत, जैन मत, बुद्ध मत, वैष्णव मत, शैव मत, आदि उत्पन्न हो गये। जिनके प्रभाव से मूर्त्ति पूजा कबर पूजा तथा नास्तिकता का उदय हुआ। हजारों वर्ष तक जड़ पूजा का दुष्प्रभाव रहा तथा लोग धीरे-धीरे वैदिक धर्म से विमुख हो गये जो राम कृष्ण का धर्म था। उनके स्थान पर राम कृष्ण के मन्दिर बनाकर उनकी पूजा होने लगी। जड़ पूजा से लोगों की बुद्धि जड़ हो गई। लोग प्रगतिशील न रहकर, प्रमादी बन गये। लोग देश प्रेमी व धर्मी न रह कर अधर्मी व स्वार्थी बन गये। जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत टुकड़ों में बंट गया। इन परिस्थितियों में महर्षि

दयानन्द का आगमन मानों ईश्वर की भारतवासियों पर विशेष कृपा दृष्टि का ही परिणाम हैं

गुरुवर देव दयानन्द जी महाराज ने अपने परम पज्य गुरु विरजानन्द जी की आज्ञा का पालन करते हुए सारी पुस्तकें जल प्रवाह कर दीं तथा नये सिरे से वेद तथा व्याकरण का अध्ययन आरम्भ किया। कई वर्षों तक शिक्षा प्राप्त कर लेने के पश्चात् गुरु विरजानन्द जी ने कहा- "दयानन्द अब तुम सम्पूर्ण शिक्षा से युक्त हो चुके हो, जाओं तथा विश्व का कल्याण करो।"

क्योंकि वेद उस समय अलोप हो चुके थे और जड़ पूजा का बोलबाला था। पण्ड़ों ने, पौराणिकों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि व हलवे मांडे के लिये नये-नये मन्त्र बनाकर वेदों में मिश्रित कर दिये थे। लोगों को मूर्ख बनाकर यज्ञों के नाम पर हिंसा की जाने लगी, प्रतिमा बना कर भगवान् की पूजा होने लगी, ऐसी अनेकों ही अनर्गल बातें जोड़कर लोगों को भ्रम जाल में फंसा कर, श्राद्ध तर्पण जैसी अन्धी श्रद्धा के नाम पर लूटा जा रहा था। स्वामी दयानन्द जी महाराज यह सब देख कर विचलित हो उठे और कहा कि सुन्दर पदार्थों से बने शुद्ध भोजन में विष की बूंद मिलाने से सारा भोजन जैसे विषैला हो जाता है उसी प्रकार वेदों के शुद्ध पवित्र मन्त्रों में स्वार्थ भरे मन्त्रों को मिला कर मनुष्य मात्र के साथ बहुत बड़ा घोटाला कर दिया गया है। स्वामी जी ने मूल वेद जर्मन से मंगवाए और घोर परिश्रम करके एक-एक मन्त्र को व्याकरण की कसौटी पर कसा, शुद्ध पवित्र अर्थ किए। वेद की पुस्तकों पर चढ़ी धूल मिट्टी को हटा कर साफ सुथरा करके लोगों को दिये और कहा-'हे भारत वासियों यदि अपना कल्याण चाहते हो तो वेदों की ओर वापिस चले आओ। जब घर-घर के अन्दर वेद पढ़े जाते थे और चारों ओर वैदिक धर्म का प्रचार होता था, उस समय आर्यों का सार्वभौम राज्य था। जब से वेदों का व वैदिक धर्म का त्याग किया हैं भारत कमजोर और अज्ञानता के अन्धकार में फंस गया है। अत: वेदों की ओर मुड़ों।" अज्ञानता के अन्धकार को दूर करने के लिये महर्षि दयानन्द जी ने जो ज्योति जलाई थी, वो आज भी जल रही है और हमेशा जलती रहेगी। संसार ने उनकी घोषणा को सुना, समझा और लोग उनके पीछे हो लिये। यही कारण है कि आज वेद ज्ञान को समझने के लिये संसार के वैज्ञानिक वेद पर अनुसंधान कर रहे हैं। स्वामी जी महाराज ने वेदों का असली रूप जनता के सामने रखा।

वेदों को आधार बनाकर अनेकों ही आयुर्वेदिक औषधियों का निर्माण किया जा रहा है। ईश्वरीय वाणी वेद का एक सूत्र विश्व के प्रत्येक मानता के लिये समान रूप से हितकारी है। भले ही वह किसी भी मत का क्यों न हो। जैसे पक्षियों के लिये सीमा नहीं होती। वे सारे आकाश में उड़ सकते हैं। उन पर कोई पाबन्दी नहीं। मनुष्य भी पक्षियों की भांति स्वतन्त्र रहना चाहता है। देशों की सीमाओं में कैद हो कर रहना नहीं चाहता। अत: वेद कहता है- 'हे मानव सारा संसार तेरा घर है। सारे लोग तेरे अपने हैं। तुम सब के साथ प्यार पूर्वक रहो।" वेद की शिक्षाओ को आगे बढ़ाते हुए महर्षि दयानन्द जी कहते हैं कि ईश्वर निराकार है, सृष्टि का उत्पत्ति कर्त्ता है, उसी की भक्ति अनिवार्य है।

वेद स्वामी दयानन्द जी महाराज की खोज हैं। इसीलिये उनको "वेदों वाला" कहा जाता है। वेद

की पवित्र वाणी से विश्व भर में परस्पर प्रेम, भाईचारा तथा शान्ति स्थापित हो सकती है। वेद किसी एक देश, जाति या सम्प्रदाय के लिये नहीं हैं। ये तो सम्पूर्ण विश्व के कल्याण के लिये हैं। वेदों की रक्षा के लिये व उनके उद्धार के लिये मानो ईश्वर ने स्वयं महर्षि दयानन्द जी को इस धरती पर भेजा हो। आज आर्य समाजों, स्कूलों, कॉलेजों तथा गुरुकुलों के माध्यम से देश विदेश में जितना भी वेद का प्रचार हो रहा है, उसका श्रेय स्वामी दयानन्द जी को ही जाता है, जिन्होंने वेदों के उद्धार के लिये अपना सारा जीवन लगा दिया। वेद एक ज्योति है, एक रोशनी है जो मानव को संसर में जीने की राह दिखाती है।

वेदोऽखिलो धर्म मूलम् अर्थात् वेद ही धर्म का मूल हैं। वेद ही सच्चा कामधेनु गाय है जो अपने बच्चों को अमृत भरा दूध पिलाती रहती है। वेद ही कल्याणकारिणी माता है जो बिना भेदभाव के सारे संसार का भला करती हैं। वेद सत्य है तथा सत्य ही ईश्वर है।

भिन्न-भिन्न मतों के अपने-अपने धार्मिक ग्रन्थ हैं जैसे गुरु नानकदेव जी महाराज ने कहा है-"असंख्य ग्रन्थ मुख वेद पाठ।" अर्थात्- संसार के असंख्य ग्रंथों में मुख्य वेद का पाठ है। परन्तु ग्रंथों के ढेर में वेद सबसे नीचे धूल में पड़े हैं और सबसे ऊपर कुरान व बाईबल हैं। महर्षि दयानन्द ने आकर ग्रन्थों के इस ढेर को उल्टा दिया। जो वेद नीचे पड़े थे उनको ऊपर तथा कुरान व बाईबल को नीचे कर दिया। संसार में हलचल सी मच गई कि ऐसा कोन सा फकीर आ गया है जिसने अन्य मतों को ललकारा है। पाखण्डी, दम्भी पंडितो, मुल्लाओं व पादरियों की नींद उड़ गई। महर्षि दयानन्द ने कहा-"वेद-ज्ञान व सत्य विद्याओं का भण्डार है। वेद ईश्वरीय काव्य है। केवल एक ईश्वर की ही पूजा करनी अनिवार्य है। जो व्यक्ति ईश्वर को छोड़ किसी अन्य व्यक्ति विशेष, पशु, पक्षी, वृक्ष, पुस्तक, मूर्त्ति व कब्र आदि को ईश्वर मानकर, उसकी पूजा करता है, वह व्यक्ति घोर पापी तथा नरक को प्राप्त होता है।"

गुरु नानक देव जी ने भी ठीक ही कहा है-

इको सिमरिये नानका जो जल थल रिया समाये।
दूजा काहे सिमरिये जो जम्मे ते मर जाये।।

महर्षि दयानन्द जी ने असम्भव को सम्भव कर दिखाया। कोई सोच भी नहीं सकता था कि पाखण्ड, अन्धविश्वास व अज्ञानता का साम्राजय भी कभी कोई समाप्त कर पायेगा परन्तु ऋषिवर देव दयानन्द ने युग परिवर्तन कर दिया। उन्होंने वेदों का पुनः उद्धार करके उनकी खोई हुई प्रतिष्ठा को फिर से स्थापित कर दिंया, भले ही इनके लिये उनको अपने जीवन की बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। "वेदों वाला" महर्षि दयानन्द सरस्वती सदा अमर रहेगा। किसी कवि ने ठीक ही कहा है-

लोग कहते हैं बदलता है जमाना अक्सर।
मर्द वे हैं जो जमाने को बदल देते हैं।

-पं. बनारसीदास आर्य

गतांक से आगे

आओ अपने घर चलें

(सत्यानन्द वेदवागीश)

पड़ोसन की बात सुनकर पाण्डेजी अवाक् रह गये । मन में विचारा-ओ हो ! शर्मा जी मेरे बेटे की रात भर सेवा करते रहे !! २-३ दिन में बेटा स्वस्थ हो गया । एक दिन सवेरे ही पाण्डेजी ने शर्माजी का दरवाजा खटखटाया । शर्माजी ने द्वार खोला और पूछा-"क्या बच्चे को फिर बुखार हो गया है ? पाण्डेजी कुछ नहीं बोले, ५ सेकंड शर्माजी की ओर देखा और तुरन्त शर्मा के पैरों में गिर पड़े ? शर्माजी ने उन्हें उठाया। पाण्डेजी के मुख से निकला-"शर्माजी ! मुझे भी आर्यसमाजी बनालो" । शर्माजी "क्या बात हो गई ?" पाण्डेजी-'अरे ! शर्माजी ! एक बेटे का सगा बाप तो अपने रोगी बेटे को छोड़कर गाढ़ निद्रा में सो सकता है, किन्तु एक आर्यसमाजी, अपने मित्र के पुत्र की रात भर जागकर सेवा करता है '। यह है सच्चे आर्यसमाजी की= आर्य की परदु:खकारता । सच्चा आर्य कौन ? जो पराये दु:ख को दूर करने में अपना तन-मन आदि लगा देता है ।

७. आर्य की सातवीं विशेषता है-"दत्त्वा पश्चात् अनुतापं न करोति" दे देने के बाद जो पश्चात्ताप नहीं करता है । कैकेयी द्वारा धर्षित राजा दशरथ को अन्त में राम को चौदह वर्ष के लिये वन में रहने की आज्ञा देनी पड़ी । राम तुरन्त सहर्ष तैयार हो गये, उसी दिन वन में जाने को । वास्तव में तो राम ने सदा वन में ही रहने का मन बना लिया था। इसीलिये तो उन्होंने अपने हिस्से के रत्न-धन आदि और गौओं को चौदह वर्षों के लिये सहज कर रखने की व्यवस्था नहीं की । अपितु सब कुछ दान करना आरम्भ कर दिया । **"अहं प्रदातुमिच्छामि यदिदं मामकं धनम् । ब्राह्मणेभ्यस्तपस्विभ्यस्त्वया सह परन्तप"** ।। मैं अपना धन ब्राह्मणों और तपस्वियों को देना चाहता हूँ । (वाल्मी. अयो.३१.३५) ब्राह्मणों और तपस्वियों को धनादि बांटना आरम्भ किया । गुरु वसिष्ठ के पुत्र सुयज्ञ को बुलाकर उसे आदर पूर्वक सोने के बने अनेक आभूषण, मणि, रत्न आदि दिलवाये । सुयज्ञ की पत्नी के लिये सीता ने उत्तम हार, सुवर्ण घटित कणकती और अनेक रत्नों से सुशोभित पलङ्ग आस्तरण सहित प्रदान किया । सुयज्ञ को शत्रुञ्जय नाम का हाथी, जो राम को मामा से मिला था, वह भी दे दिया। फिर अगस्त्य और कौशिक नामक श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सोने चान्दी और मणियाँ प्रदान की । तैत्तिरीय आचार्य को उत्तम रथ प्रदान किया। चित्ररथ नाम के सारथि को बहुमूल्य रत्नों और वस्त्रों से सत्कृत किया ।

गुरुकुलों में रहने वाले दण्डमाणव ब्रह्मचारियों के लिये अस्सी रथ भिजवाये । उसके बाद गोदान आरम्भ हुआ । हजारों गोएँ दान में दी गई । वनवासी त्रिजट नामक गृहस्थ तपस्वी अपनी पत्नी की प्रेरणा से उसी समय आया और राम से गौएँ देने की प्रार्थना की । राम ने उस तेजस्वी त्रिजट से कहा-आपके हाथ में जो डण्डा है उसे गौओं के बीच में फैंको । दण्ड जहाँ गिरेगा वहाँ तक की गायें तुम्हारी । चतुर त्रिजट ने पहले अपनी कमर को वस्त्र से कस कर बांधा और पूरी ताकत से डंडा फेंका । जहाँ वह डंडा गिरा । वहाँ तक की

हजारों गायें त्रिजट को दे दी । (वाल्मी. अयो.३२वाँ सर्ग)

इस प्रकार राम ने अपनी कौनसी वस्तु दान नहीं करी ? सब कुछ दे दिया । राम का यह वन गमन तो वास्तव में सर्वस्व-दान का प्रकरण बन गया । राम ने तो वन में ही रह जाने का मानस जो बना लिया था । वापिस अयोध्या आनेका उनका कतई विचार नहीं था ।

राम फिर चौदह वर्ष बाद अयोध्या क्यों लौटे ? राम चौदह वर्ष बाद अयोध्या लौटे अपने प्रिय भ्राता भरत के प्राण बचाने को, उसे जीवित रखने को । ननिहाल से लौटने के पश्चात् जब राम को वापिस अयोध्या लाने के लिये भरत चित्रकूट गये । साथ तीनों माताएँ, वसिष्ठ आदि गुरुजन तथा अन्य भी हजारों लोग । सब इसीलिये गये कि राम किसी तरह मान जायें । भरत ने हजार अनुनय-विनय कर ली । माताओं ने मनुहार कर ली । वसिष्ठ आदि ने शास्त्रों की दुहाई देकर अयोध्या का राज्य सम्भालने का आदेश सा दिया । पर राम टस से मस नहीं हुए । उनका कहना था-राजा दशरथ मेरे पिता को मैंनें वचन दिया था, चौदह वर्ष वन में रहने का, सो मैं उस वचनसे विपरीत कैसे कर सकता हूँ-''**रामो द्विर्नाभि भाषते**'' राम दो प्रकार की बात नहीं कर सकता । ''**रघुकुल रीति सदा चली आई, प्राण जायँ पर वचन नहीं जाई**'' । तब अन्त में हार कर भरत ने कहा-सुनो भ्राताजी !''**चतुर्दशे हि सम्पूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम । न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।।** (वाल्मी. अयो.११२,२५,२६)-चौदह वर्ष की समाप्ति के दिन यदि मैं आपका अयोध्या में दर्शन न पाऊँगा, तो मैं अग्नि में जल मरूँगा । सो अपने अनुज भरत के प्राणधारणार्थ चौदह वर्षों के पूरे होने के एक दिन पूर्व राम अयोध्या की कुछ दूरी पर स्थित भरद्वाजमुनि के आश्रम में आ गये । वहाँ से उन्होंने हनुमान् को भरत के पास भेजा, यह सूचना देने के लिये कि राम पास ही आ गये हैं । किन्तु राम तो राम ही थे। ''**गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः। उपमानं नु रामस्य राम एव न संशयः** । जैसे आकाश की उपमा आकाश से ही दी जा सकती है और सागर की उपमा सागर से, तो राम की उपमा भी राम से ही दी जा सकती है । भरत की प्राणान्तक प्रतिज्ञा के कारण राम अयोध्या के समीप आ तो गये, पर अब भी त्यागे हुए-दिये हुए राज्य को पाने की उनमें किञ्चित् भी लालसा नहीं थी । अतएव उन्होंने हनुमान् से कहा-''**एतच्छुत्वा यमाकारं भजते भरतस्ततः । स च ते वेदितव्यः स्यात् सर्वं यश्चापि मां प्रति''ज्ञेया= सार्वेऽपि वृत्तान्ता भरतस्येङ्गितानि च । तत्त्वेन मुखवर्णेन दृष्टया व्याभाषितेन च ।।** (वाल्मी. युद्ध.१२५.१४,१५) -हे हनुमान् ! जब तुम भरत को मेरे आने की सूचना दो तो इन बातों पर ध्यान देना कि तुम्हारी सूचना पाकर भरत का आकार कैसा हो रहा है, उनके मुख से कौन से शब्द निकले हैं ? भरत की तब चेष्टा और इङ्गित-इशारा कैसा हो रहा है, उनके मुख का रंग बदल तो नहीं गया है, उनकी दृष्टि-आँखों की स्थिति क्या है आदि । श्रीराम ने हनुमान् को ऐसा क्यों कहा ? इसलिये कि चौदह वर्ष तक शासन करने से यदि भरत में शासन की राज्यशासन की आकांक्षा प्रस्फुटित हो गई हो तो मैं तुरन्त यहाँ से वापिस वन में चला जाऊँगा । पर भरत भी भरत ही थे, रामागमन की बात सुनते ही हर्ष के मारे बेहोश हो

गये। चेतना आते ही छोटे भाई शत्रुघ्न, सभी मन्त्रियों और सहस्रों सैनिकों के साथ राम की अगवानी करने चल दिये । तो राम सच्चे आर्य थे । भरत ने एक प्रसंग में राम के लिये ६३ बार आर्य विशेषण लगाया था ।

ऋषि दयानन्दजी ने गुरुवर दण्डी जी से यथेष्ट विद्याओं का उपार्जन करके, वहाँ से जाने के लिये जब विदा मांगी, तब विरजानन्दजी दण्डी ने आर्ष विद्या का प्रचार, अविद्या का नाश और पाखण्डोन्मूलन के लिये दयानन्दजी का जीवन मांगा । तब तुरन्त उसीक्षण दयानन्द ने अपने जीवन का दान कर दिया । और उस दान से कभी विमुख नहीं हुए । कभी पश्चात्ताप नहीं किया । एक दिन अजमेर में ऋषि का प्रवचन हुआ । प्रवचन के बाद किशनगढ़ रियासत के दीवान ने ऋषि दयानन्दजी से निवेदन किया, कि 'भगवन्! आप वेदोक्त उत्तम बातों का अपने प्रवचन में मुख्य स्थान रखें, खण्डन की बात तो थोड़ी सी पीछे से कह दिया करें, ऐसा करने से अधिक लोग आपके अनुयायी बन जायेंगे । ऋषि ने उत्तर दिया-''दीवानजी ! हम इस बात को जानते हैं कि यदि हम मूर्तिपूजा आदि बुराइयों का खण्डन नहीं करें तो बहुत लोग हमसे जुड़ जायेंगे और हम पर जो आक्रमण होते हैं, वे भी नहीं होंगे । किन्तु ऐसा करने से हमने जो गुरुजी को वचन दिया है, उससे फिर जायेंगे । अतः हम गुरु को दिये वचन के अनुसार कार्य करेंगे, चाहे कितने ही कष्ट उठाने पड़ें । और इस प्रकार दयानन्दजी ने दिये गये पर कभी पश्चात्ताप नहीं किया । वे सच्चे आर्य थे ।

तो इस प्रकार अपने विशालातिविशालतम घर तक पहुँचने के लिये दूसरे उपाय के रूप में जो सम्पूर्ण को आर्य बनाने की= किसी से शत्रुता न करने की, अभिमान, परित्याग की, अपने अस्तित्व की रक्षा की मजबूरी में भी अधर्म न करने की, केवल स्वयं के सुख में ही मग्न न रहने की, पराये दु:ख को दूर करने की और दिये गये पर पश्चात्ताप नहीं करने की यह चर्चा समाप्त हुई ।

अपने घर पहुँचने का वेदोक्त तीसरा उपाय है-''अराव्ण: अपघ्नन्त:''-न देने के भाव को-कृपणता को नष्ट करते हुए। ''रा'' धातु का अर्थ है-'देना' । 'रावा'=देने का भाव । ''अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते'' (अष्टा.३.२.७५) से अथवा उणादि.४.११३ से बाहुलकाद् भाव में रा धातु से वनिंप् प्रत्यय । न+रावा=अरावा =न देने का भाव =कृपणता =कंजूसी । धन की कंसूजी, समय की कंजूसी, सहयोग की कंजूसी । स्विष्टकृत् मन्त्र में कहा गया है-''यदस्य कर्मणो अत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । इष्टा कहते हैं इच्छित = अभीष्ट पदार्थ को-इच्छित लक्ष्य को । ''स्विष्ट'' कहते हैं अत्यन्त अभीष्ट पदार्थ को लक्ष्य को TOP PRIORITY Top priority वाले लक्ष्य या पदार्थ को तो हमारा यहाँ सर्वोच्च अभीष्ट प्राथमिकता वाला लक्ष्य है अपने विशालतम घर पहुँचना । तो उसके जो साधन बताये गये हैं और जिनकी चर्चा की जायेगी उनकी पूर्ति के लिये पूरा तन-मन-धन और समय लगाने में तनिक सी भी कृपणता न करें । शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान की सिद्धि के लिये पूरा समय लगावें । शत्रुभाव के विनाश, अभिमानत्याग, स्वसंस्कृति आदि के अस्तित्व की रक्षा, दुरवस्था में भी स्वकर्म पर-स्वधर्म पर आरूढ रहना, स्वसुख के साथ परसुख का भी प्रयास करना, परदु:ख का तरता और दिये दान पर दृढ़ रहना आदि आर्यत्व की विशेषताओं को अपनाने में समय लगाने में किञ्चित् भी कृपणता न करें । श्री रामचन्द्र,

श्रीकृष्ण, कपिल, कणाद, मनु, विरजानन्द दण्डी और स्वामी दयानन्दजी के जीवनों का अनुसरण करते हुए, व्यर्थ के कार्यों में अपने बहुमूल्य समय का एकक्षण भी व्यर्थ न लगावें और कर्त्तव्य कार्यों में पूरा समय लगावें ।

अपने घर पहुँचने के चौथे और अन्तिम उपाय के रूप में वेद ने बताया-"इन्द्रंगच्छन्त:"-इन्द्र को =परमैश्वर्यशाली परमात्मा को जानते हुए और प्राप्त करते हुए, अपने घर पर पहुँचे । यहाँ गच्छन्त: के दोनों अर्थ हैं-जानना और प्राप्त होना-गतेस्त्रयो अर्था ज्ञानं गमंन प्राप्तिश्चेति । जिसे प्राप्त करना होता है-पाना होता है; पहिले उसके स्वरूप-गुण-कर्म आदि को जानना आवश्यक है । सो परमेश्वर को तभी प्राप्त किया जा सकता है, जबकि उसके गुण-कर्म-स्वभाव-स्वरूप आदि को जाना जाय । सच्चे अनुपम ईश्वर भक्त ऋषि दयानन्दजी सरस्वती ने शास्त्रों के अनुशीलन और स्वानुभूति के आधार पर परमेश्वर के स्वरूप-गुण आदि को आर्यसमाज के द्वितीय नियम में संक्षेप में दर्शा दिया है।

ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप (है) । सत् (स्वरूप) है- ईश्वर की सत्ता है- उसका अस्तित्व है । प्रभु की सत्ता आठ प्रकार के अनुमानों से समझी जा सकती है (१) कार्य के द्वारा-कृति के द्वारा । जब हम किसी कृति को-रचना को देखते हैं, तो उसको करने वाले का रचने वाले का अवश्य अनुमान होता है । घड़े को देखने पर उसके रचयिता कुम्हार की सत्ता का ज्ञान होता है, वैसे ही पृथिवी-जल-अग्नि-वायु-सूर्य-चन्द्र और अरबों लोक लोकान्तरों को देखकर उनका रचयिता भी कोई अवश्य है- और वह ईश्वर है । बिना रचनाकार के किसी रचना का होना सम्भव ही नहीं है। (२) आयोजन से- व्यवस्था से भी ईश्वर की सत्ता का अनुमान होता है । आकाश में तारे, ग्रह, उपग्रह और क्षुद्रग्रहों का अपनी धुरी पर घूमना और किसी अन्य पिण्ड के चारों और परिभ्रमण करना। ठीक ठीक दूरी पर सूर्य से पृथिवी आदि ग्रहों को घुमाना, पृथिवी आदि से चन्द्रमा आदि उपग्रहों का उचित दूरी पर घुमाना आदि व्यवस्था को देखकर उसके व्यवस्थापक-आयोजक के रूप में ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है । बिना आयोजक के व्यवस्थापक के स्वत: आयोजन या व्यवस्था का होना असम्भव है । (३) धृति=धारण से भी परमात्मा की सत्ता सिद्ध होती है । पृथिवी-सूर्य आदि विशालतम पिण्डों को आकाश में कौन धारण कर रहा है ? जो इनको धारण करने वाला है-इन्हें गिरने से रोके हुए है, वही ईश्वर है । (४) पद से =वाचक शब्द से भी ईश्वरसत्ता सिद्ध होती है । किसी वस्तु की सत्ता होती है, तभी उसका वाचक नाम=पद=शब्द होता है । जब ईश्वर की सत्ता है, तभी परमात्मा, परमेश्वर, ब्रह्म, भगवान्, अल्लाह, खुदा, गोड आदि शब्दों का प्रयोग होता है । कहा जा सकता है कि सत्ता के अभाव में भी उसके वाचक नाम या शब्द होते हैं जैसे आकाश पुष्प, वन्ध्यापुत्र, नरशृङ्ग आदि । वस्तुत: यह भूल है । आकाशपुष्प आदि एक शब्द नहीं है । आकाश शब्द पृथक् है और पुष्प शब्द पृथक् है और दोनों सत्तावान् है । दोनों को मिलाकर झूठी कल्पना आकाशपुष्प की की गई है । कोई स्त्री वन्ध्या भी होती है और पुत्र भी किसी और का होता है, दोनों को मिलाकर असत्य कल्पना की जाती है । नर=मनुष्य होता ही है और पशु के शृङ्ग भी होता है, दोनों को मिलाकर मिथ्या कल्पना नरशृङ्ग रूप में घड़ी जाती है।

अत: ईश्वरके वाचक शब्द हैं तो उसका वाच्य ईश्वर सत्तावान् है ।

"पद" का अर्थ व्यवहार भी होता है । सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों को व्यवहार की शिक्षा देने वाला कोई अवश्य होना चाहिये, नहीं तो वह सदा पशुवत् ही रहता । पुत्र सदा पिता के समान व्रती बनें, माता के समान दयालु मनवाला बने । पत्नी, पति आदि के प्रति मधुर वचन बोले । भाई भाई से, बहनें बहिन से द्वेष न करें । "अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु सम्मनाः । जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु भद्रया । मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारझुमुतस्वसा" (अथर्व. ३.३०.२,३) यह व्यवहारिक शिक्षा देने वाला परमेश्वर के सिवाय दूसरा कोई नहीं है । अत: ईश्वर की सत्ता है ।

(क्रमशः)

नेपाल के काठमाण्डू शहर में अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन

(20.10.2016 से 22.10.2016तक)

धार्मिक एवं रमणीय स्थानों की स्लीपर कोच बस द्वारा यात्रा काठमाण्डू (5दिन) में डिलक्स

काठमाण्डू, पोखरा, अयोध्या, वारणासी, ईलाहबाद, आगरा

सर्वधर्म प्रेमी सज्जनों को सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि डिलक्स बसों द्वारा निम्न धार्मिक व रमणीय स्थानों की यात्रा का आयोजन किया गया है। जिन भक्तजनों को इस शुभ धार्मिक यात्रा का लाभ उठाना हो वे सज्जन 25प्रतिशत देकर अपनी सीट आज ही बुक करवा लें। सीट नम्बर से ही रिजर्व कि जाती है। यात्रा प्रस्थान जोधपुर से सुबह 7.00 बजे होगी।

★जोधपुर-दयानन्द स्मृति भवन, रातानाडा से प्रस्थान ★अयोध्या-राम जन्म भूमि, सरयु स्नान, हनुमानगडी,कणकभवन
★काडमांडू (नेपाल विदेश यात्रा) अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन, पशुपतिनाथ महादेव व अन्य साईड सीन
★पोखरा-डेविस फाल, गुप्तेश्वर महादेव, बिन्दया वासिनी माता मन्दिर, वराई माता मन्दिर, सेती गन्दकी नदी,महेन्द्र गुफा
★गोरखपुर-गोरखनाथ जी के दर्शन,★बनारस-काशी विश्वनाथ ज्योतिलिंग, संकट मोचन,तुलसी मानस मन्दिर, दुर्गामाता मन्दिर
★इलाहाबाद-त्रिवेणी स्नान,अशोक किला,★आगरा-ताजमहल, लालकिला,दयालबाग ★जोधपुर

यात्रा का विवरण :

14.10.2016- जोधपुर से यात्रा प्रस्थान
15.10.2016-इलाहाबाद त्रिवेणी संगम स्नान
16.10.2016-वाराणासी
17.10.2016-गोरखपुर मन्दिर, पोखरा
18.10.2016-पोखरा (पोखरा साईड सीन व शहर भ्रमण)
काठमाण्डू अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, साईड सीन व शहर भ्रमण
(19.10.2016 से 23.10.2016 तक)
24.10.2016-अयोध्या
25.10.2016-आगरा
26.10.2016-जोधपुर

यात्रा अवधि 13 दिन

स्लीपर कोच बस

सीट (2×2पुश बेक)	- 10000/-
अपर स्लीपर	- 12000/-
डाउन स्लीपर	- 13000/-

किराया प्रति यात्री

चाय,नाश्ता,भोजन, आवास सुविधा सहित

भोजन: सुबह चाय, दोनों समय भोजन (सब्जी,अचार,रोटी या पूडी) दी जायेगी। पानी की बोतल, कंम्पर एवं पहले दिन का भात सुबह का भोजन साथ लावें।

ठहरने की व्यवस्था- सभी यात्रियों को धर्मशाला में ठहरने की सुविधा दी जायेगी। जो यात्री अलग से रूम में ठहरना चाहे तो रूम चार्ज स्वयं को देना होगा।

सम्पर्क सूत्रःदयानन्द स्मृति भवन ,रातानाडा, जोधपुर
नरपतसिंह गहलोत आर्य -मोबाइल:94144-75031

गतांक से आगे

आर्यसमाज के स्वर्णिम सिद्धान्त

"दूसरा नियम"

-श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

<u>ईश्वर स्वरूप</u>—

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता हैं। उसीकी उपासना करनी योग्य है । स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नावरिँ शुद्धपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।

—यजु. ४०।८

एक एव नमस्य विक्ष्वीड्यः।

—अथर्व.२।२।१

ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वोत्पादक, काया और छिद्ररहित, नस-नाड़ी के बिना, पाप से शून्य, क्रान्तदर्शी, मन का स्वामी, विजयी और स्वयंभू है तथा अनादि काल से सम्पूर्ण पदार्थों की यथायोग्य रचना करता हैं। — (एक अद्वितीय परमात्मा ही उपासना के योग्य हैं।)

रचना को देखकर रचयिता का ज्ञान होता है। इस ब्रह्माण्ड की वैज्ञानिक, विचित्र और अद्भुत रचना को देखकर हमें विवश होकर ईश्वर की सत्ता स्वीकार करनी पड़ती हैं। ईश्वर के विषय में लोगों में नाना भ्रान्तियाँ है, कोई उसे चौथे आसमान पर मानता है, कोई सातवें पर और कोई क्षीरसागर में। प्रश्न उत्पन्न होता है हम कैसे ईश्वर को मानें? इस नियम में ईश्वर के विशेषणों का उल्लेख कर उसका सच्चा स्वरूप बताया गया हैं।

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। प्रकृति और जीव से भिन्नता प्रकट करने के लिए ईश्वर को सच्चिदानन्द कहा गया हैं। प्रकृति सत् है, जीव सत्, चित् है और ईश्वर सत्, चित् आनन्द हैं। उसके आनन्द को हम प्रतिदिन चाहते हैं। यह चाहना यह बता रही है कि वह कहीं है और हमने कभी उसका उपभोग भी किया हैं। वेद में भी कहा है-

त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते। —ऋ.१।५९।१

— (तुझ में सब भक्त आनन्द पाते हैं)

ईश्वर निराकार है। परमात्मा का कोई शरीर नहीं है और जब उसका कोई शरीर, आकार ही नहीं है तब उसकी मूर्त्ति भी नहीं बनाई जा सकती।

ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। अपने कार्य में ईश्वर किसी की सहायता नहीं लेता। कृषक जो ऋषि के शब्दों में "राजाओं का राजा है", हल, बैल, बीज आदि का दास है। परन्तु ईश्वर अपनी सृष्टि-रचना आदि कार्य में किसी की सहायता नहीं लेता, अतः वह सर्वशक्तिमान् हैं। सर्वशक्तिमान् का यह अर्थ नहीं कि

ईश्वर अपने बनाये नियमों को तोड़कर जैसा चाहे वैसा कर लें। ईश्वर चोरी और भ्रष्टाचार नहीं कर सकता, झूठ नहीं बोल सकता, अपने जैसा दूसरा ईश्वर नहीं बना सकता, अपने कन्धे पर स्वयं नहीं चढ़ सकता, अपने आपको मार नहीं सकता और किसी भी व्यक्ति को अपने राज्य से बाहर नहीं निकाल सकता। सर्वशक्तिमान् का भाव यह है कि ईश्वर अपने कार्यों में दूसरे के अधीन नहीं हैं।

ईश्वर न्यायकारी है। ईश्वर सबके साथ न्याय करता है, अन्याय कभी नहीं करता। जैसा कोई करता है वैसा ही उसे फल देता है, दुष्टों को दण्ड देता है। ब्राह्मण हो या चाण्डाल, राजा हो या रंक सब के साथ न्याय करता यहै, किसी के साथ भेद-भाव नहीं करता और न किसी की सिफारिश सुनता है। प्रभु जीवों को कर्मों का फल देता हैं यह उसकी सब से बड़ी दया हैं।

ईश्वर दयालु हैं। संसार के सभी प्राणी उसके दया के पात्र है। ईश्वर ने हमें रहने को भूमि, भोजन के लिए फल तथा अन्न और वायु, जल उद्यान आदि प्रदान किये हैं। एक बीज बोकर सहस्त्रोफल मिलते हैं। नास्तिक और अपराधी भी उसके राज्य में सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। ये सब प्रभु की दया के प्रबल प्रमाण हैं। कुछ लोग कहते हैं कि ईश्वर दयालु है तो न्यायकारी नहीं हो सकता क्योंकि यदि वह चोर-डाकुओं को दण्ड देता है तो दयालु नहीं रहा। यदि उन्हें छोड़ देता है तो उसका न्याय नष्ट होता है। यह बात ठीक नहीं। चोर डाकुओं को छोड़ देना उन पर दया नहीं है अपितु आत्मा को कलंकित करना है और भद्र पुरुषों पर अत्याचार है। सच्ची दया न्याय में हैं जिससे चोर-डाकू भी सुधर जाएँ और सदाचारी पुरुष भी सुख-शान्ति से जीवन व्यतीत कर सकें? उसकी रचना में न्याय और दया अंग-संग चलते हैं। दोनों गुण एक-दूसरे के पूरक हैं।

ईश्वर अजन्मा है। ईश्वर सदा से है और सदा रहेगा, फिर उसका अवतार कैसे हो सकता है? वह सर्वव्यापक है, सर्वत्र विद्यमान है फिर उसका अवतार=उतरना कैसे सम्भव हो सकता हैं। वह जन्म-मरण के बन्धन से रहित है। **ईश्वर अनन्त है**। सूर्य-चन्द्र आदि सब का आरम्भ भी है और अन्त भी है, परन्तु ईश्वर का न कोई आदि है और न अन्त है। वह सर्वत्र व्याप्त है अत: वह अनन्त हैं।

ईश्वर निर्विकार है। ईश्वर जागरित, स्वप्न, सुषुप्ति, बन्ध-मोक्ष आदि अवस्थाओं में नहीं आता, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता, वह सदा एक-सा रहता है। संसार के पदार्थ बदलते रहते हैं। और बदलते रहेंगे, परन्तु ईश्वर कभी नही बदलता। **ईश्वर अनादि है**। ईश्वर का कोई आरम्भ नहीं है, न किसी समय ईश्वर का अभाव था और न कभी होगा।

ईश्वर अनुपम हैं। ईश्वर जैसा कोई नहीं और जब कोई उसके तुल्य नहीं तो उससे बड़ा क्योंकर हो सकता है? उस जैसी कोई दूसरी सत्ता नहीं।

ईश्वर सर्वाधार है। वह सबका सहारा और आश्रय है। सूर्य-ग्रहण, पृथ्वी आदि उसी के सहारे से स्थिर हैं। वेद में कहा हैं-

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्। —यजु. १३।४

वह परमात्मा ही पृथ्वी और द्युलोक को धारण कर रहा है। वही शक्ति सबको स्थिर रख रही है अन्यथा ये ग्रह, उपग्रह एक दूसरे से टकराकर नष्ट हो जाएँ।

परमात्मा सर्वेश्वर है। परमात्मा सारे ब्रह्माण्ड का सवामी हैं। वह राजाओं का राजा और सम्राटों का सम्राट् हैं।

परमात्मा सर्वव्यापक हैं। ईश्वर अणु-अणु और कण-कण में व्यापक हैं। एक उर्दू के कवि ने कहा है -

"सिफ़त तेरी हर खार देता है, हर गुञ्चा ओ गुल तेरी सदा देता है।"

प्रभु काँटे और फूल सब में विद्यमान है। पत्ता-पत्ता उसका पता देता हे। उसे ढूँढ़ने के लिए मक्का, मदीना और काशी जाने की आवश्यकता नहीं, वह तो हमारे पास, हमारे हृदय में ही है—

दिल के आइने में है तस्वीरे यार। जब जरा गर्दन झुकाई देख ली।।

ईश्वर सर्वान्तर्यामी है। वह घट-घट की बात जानने वाला है। दो व्यक्ति जो गुप्त-मन्त्रणा करते है ईश्वर वरुणरूप से उसे भी जानता हे।।

ईश्वर अजर हैं। वह कभी बूढ़ा नहीं होता। वह अमर है, उसका कभी नाश नहीं होता। वह अभय है, किसी से डरता नहीं, वह नित्य और पवित्र हैं।

ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है, ईश्वर संसार की रचना करता है। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय परमात्मा के ही अधीन हैं।

पहले भाग में ईश्वर के विशेषणों का वर्णन करके दूसरे भाग में उस ईश्वर की उपासना का विधान किया गया हैं। प्रभु-प्राप्ति में मूर्त्तिपूजा एक रुकावट है। महर्षि दयानन्द के शब्दों में—

मूर्त्तिपूजा सीढ़ी नहीं, किन्तु एक बड़ी खाई है, जिसमें गिरकर मनुष्य चकनाचूर हो जाता है पुनः उस खाई से निकल नहीं सकता किन्तु उसी में मर जाता है। **—सत्यार्थ प्रकाश:एकादश सम्मुलास**

आर्यसमाज निराकार परमात्मा की पूजा का आदेश देता है। कोई मनुष्य, जानवर अथवा मूर्त्ति उसका स्थान नहीं ले सकती। ब्राह्मण-ग्रन्थ में कहा है-

योऽन्यां देवतामुपासते पशुरेव स देवानाम्। —शतपथ.१४।४।२।२२

उपनिषद् भी घोषणा पूर्वक कहती हैं—

तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः। —मुण्ड.२।२।५।

जो एक परमेश्वर को छोड़कर अन्य देवता की उपासना करता है वह कुछ भी नहीं जानता, वह विद्वानों में पशु ही है। हे मनुष्यों! उठो, जागो और उस परमात्मा को जानो, अन्य की उपासनारूप वाणियों को छोड़ों।

-इन्द्र विद्यावाचस्पति

देश की पुकार

जिस समय गुरु से आर्शीवाद लेकर दयानन्द ने कार्यक्षेत्र में पांव धरा, आर्य जाति की दशा उस समय मुक्त कण्ड से चिल्ला-चिल्ला कर कह रही थे कि मुझे एक वैद्य की जरूरत है। भारत देश अज्ञान, पराधीनता, शत्रु और दु:खों के कारण सर्पों और कांटेदार झाड़ियों से भरे हुए एक खाण्डव वन के समान दुर्गम और बीहड़ हो रहा था। उसे आवश्यकता थी एक अर्जुन की, जो एक ओर अरणियों की रगड़ से आग निकाल कर दावानल को प्रज्वलित करे और दूसरे ओर आग बुझाने का यत्न करने वाले देवों और आसुरों के आक्रमणों का उत्तर दे सके। आर्य जाति की दुर्दशा उस समय एक सुधारक को बुला रही थी- एक ऐसे परखैये को बुला रही थी जो उसके पीड़ित अंगों पर शान्ति देने वाला हाथ रख सके। इस अध्याय मे हम दिखलायेंगे कि उस दुर्दशा का स्वरूप क्या था और अगले अध्यायों में यह बतलायेंगे कि ऋषि दयानन्द ने उस दुर्दशा के सुधारने का क्या उपाय किया।

ईसा की 10वीं शताब्दी तक भारत में जो उलट-फेर होते रहे, उनका वृत्तान्त हम पहिले खण्ड में सुना चुके हैं। उसके पश्चात् 11वीं शताब्दी के आरम्भ में मुसलमानों का भारत पर पूरा आक्रमण प्रारम्भ होता है। इस्लाम का आक्रमण भारत पर राजनीतिक नहीं था। वह आक्रमण प्रधानतया धार्मिक था, राजनीतिक राज्य केवल आनुषंगिक फल था। इस्लाम की तलवार भारत को मुसलमान बनाने आयी थी। आकर देखा तो शिकार को निर्बल पाया। छिन्न-छिन्न भारत थोड़े ही यत्न में राजनीतिक पराधीनता में आ गया। तलवार का उसली उद्देश्य भारत को धार्मिक दृष्टि से सर करना था। यह निश्चय से कहा जा सकता है कि उद्देश्य में इस्लाम को काफी सफलता नहीं प्राप्त हुई। कारण यह कि जहाँ भारत कई सदियों तक पराधीन रहकर भी अपनी सम्मिलित राजनीतिक शक्ति को मुसलमानों की राजनीतिक शक्ति के विरोध में खड़ा न कर सका, वहाँ उसने प्रारम्भ से ही अपने धार्मिक संगठन को समयानुकूल परिवर्तित करके आत्मरक्षा के लिए खड़ा कर दिया था।

मुसलमानी शासन के सुदीर्घ काल में भारत के धर्म में हमें जो उतार-चढ़ाव दिखाई देते हैं, वे दो प्रकार के हैं। एक ओर बाह्य आक्रमण को रोकने के लिए खाइयां खुद रही थीं, दूसरी ओर कई स्थानों पर एक विश्वव्यापकी सिद्धान्त में इस्लाम और हिन्दू धर्म को सम्मिलित करने के प्रयत्न हो रहे थे। इन दोनों ही में हमें बाहर का असर दिखाई देता हैं। सती प्रथा, पर्दा, खान-पान के बन्धन, जाति के कड़े विभाग, छूत-छात वे बाड़ें थी जिनका उद्देश्य इस्लाम से भारतीय धर्म की रक्षा करना था। सदियों तक भारतीय धर्म इस्लाम प्रभाव को रोकने के लिए करता रहा और इसमें कुछ सन्देह नहीं कि जैसी असफलता धार्मिक दृष्टि से उसे भारत में हुई वैसी कहीं नहीं हुई।

परन्तु जो बांध इस्लाम की गति को रोकने के लिए बन रहे थे, वे हर प्रकार से लाभदायक ही सिद्ध

नहीं हुए। उन्होंने शुद्ध हवा का प्रवेश रोक दिया, उन्नति और विकास के लिए गुंजायश न छोड़ी और धर्म के बलवान् प्रवाह को ऊँचे किनारों से घेर कर काई, मच्छर और कीचड़ का घर बना दिया। शत्रु के धावे को रोकने के लिए शहर के निवासी चारों ओर खाई खोद लेते हें, ऊँची दीवार चुन देते हैं, बाहर आना-जाना रुक जाता है। शत्रु अन्दर न आ सके परन्तु शहर के निवासी भी बाहर न जा सकते। उन्नति रुक जाती है, खाना-पीना कम हो जाता है, महामारी पड़ जाती है। यदि काई नगर अपनी रक्षा भी करनी चाहे, तो उसके लिए एक ही मार्ग है। वह किले से निकल कर शत्रु पर जा टूटे और उसे मार भगाए। दुर्भाग्य से उस समय हिन्दू धर्म में जान नहीं थी। वह आत्मरक्षा में लगा रहा, इस्लाम का प्रत्याक्रमण करने का उसने विचार नहीं किया। फल यह हुआ कि घर में महामारी पड़ गई। 19वीं शताब्दी के मध्य में हम भारत के असली धर्म को जंजीरों से बंधा हुआ, दीवारों से घिरा हुआ, और शहतीरों से दबा हुआ पाते हैं।

मुसलमान-काल के अन्तिम भाग में, अकबर की उदार धर्मनीति के प्रभाव से कुछ ऐसे भी यत्न हुए जिनका उद्देश्य धर्म के विश्वरूप को आगे रखकर हिन्दू-मुसलमान के भेद को मिटाना था। भक्त कबीर ऐसे यत्न करने वालों में से मुख्य थे। कबीर के शिष्य उसके सिद्धान्त का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में करते हैं:-

सब से हिलिये सब से मिलिये सब का लीजिये नाऊं।
हांजी हांजी सबसे कीजिये बसे आपने गाऊं।

भक्त कबीर के वचनों से ज्ञात होता है कि वह धर्म के व्यापक रूप में भेदों को किस प्रकार तिरोहित करना चाहता था। कबीर के शिष्य बुल्ला साहब ने अपने झलने मे यह कविता लिखी है-

जहं आदि न अंत न मध्य है रे जहं अलख निरंजन है मेला,
जहं वेद कितेब न भेद है रे, नहि हिंदु तुरक न गुरु चेला।
जहं जीवन मरन न हानि है रे, अगम अपार में जाय है खेला,
बुल्लादास अतीत यों बोल यारी सतगुरु सत शब्द देला।

मारवाड़ के भक्त दरिया साहिब ने हिन्दू-मुसलमान दोनों को ही एक पलड़े में डाल दिया है:-

मुसलमान हिन्दू कहा, षट् दरसन रंक राव।
जन दरिया निज नाम बिन सब पर जन का दाव।।

दूलनदास जी अपने झूलने में कहते हैं:-

हिन्दू तुरक दुई दीन आलम आपनी ताकीन में।
यह भी न दूलन खूब है कर ध्यान दशरथनन्द का।

वहीं कवि सत्तनाम में वेद के विषय में कहते हैं:-

तीन लोक तो वेद बखाना, चौथ लोक का मर्म न जाना।

भक्तराज धरनीदास जी कहते हैं:-

एक धनी धन मोरा हो।
जा धन ते जन भये धनी बहु हिंदू तुरक कटोरा हो।
सो धन धरनी सहजहि पावौ केवल सतगुरु के निहौरा हो।

कबीर तथा अन्य भक्तों का यह यत्न चाहे कितना ही उत्तम था, परन्तु उसमें सफलता नहीं हुई। सफलता न होने के कारण स्पष्ट है। भक्त लोग दो ऐसे धर्मों को मिलाना चाहते थे, जिनके मिलने में दो बड़ी-बड़ी रुकावटें थीं। पहली रुकावट राजनीतिक थी। मुसलमान विजेता थे, हिन्दू विजित थे। जहां एक और विजेता विजित के धर्म को तुच्छ मानकर उसके साथ सन्धि करने को उद्यत नहीं होता, वहाँ विजित जाति यदि इतिहास और आत्माभिमान रखती हो तो कभी विजेता के धर्म को स्वीकार करने के लिए उद्यत नहीं होती। राजनीतिक पराजय से गए हुए आत्मसम्मान को वह धार्मिक और सामालिक क्षेत्र में चौगुने हठ के साथ संभालने का यत्न करती हैं। कबीर और उसके साथियों को असफलता का दूसरा कारण यह हआ कि वे ऐसे दो धर्मों को मिलाना चाहते थे, जो मौलिक रूप से भिन्न है, जिसकी आधारभूत कल्पनाएँ ही जुदा-जुदा हैं।

मिलाने के यत्न निष्फल हुए। हिन्दूधर्म ने प्रत्याक्रमण करने का यत्न न करके आत्मरक्षा के लिए खाइ पर खाई खोदी, दीवार पर दीवार चुनी। यहां तक कि दम घुटने लगा, उचित भोजन के अथाव से ढ़ांचा ढीला होने लगा, अंग-से-अंग जुदा हो गया। हारे हुए, घिरे हुए, भूखे किले में सदा फूट पड़ जाया करती है। हिन्दू धर्म के घिरे हुए किले में भी फूट पड़ गयी। परिणाम में अनगिनत मत और सम्प्रदाय उत्पन्न हो गए जिनकी अधिक संख्या का अनुमान इसी से लग सकता है कि वैष्णव शैव और शाक्त इन तीन बड़े पन्थों में से केवल वैष्णव के ही निम्नलिखित 20 सम्प्रदाय थे जो एक-दूसरे को झूठे मानते और कहते थे:-
(1) श्री सम्प्रदाय, (2) वल्लभाचारी, (3) मध्वाचारी वा ब्रह्म सम्प्रदा, (4) सनकादिक सम्प्रदाय या नीमावत, (5) रामानन्दी या रामावत,(6) राधावल्लभी, (7) नित्यानन्दी, (8) कबीर पन्थी, (9) खाकी, (10) मलूकदासी, (11) रामदासी, (12) दादूपन्थी (13) सेनाई, (14) मीरोबाई, (15) सखीभाव, (16) चरणदासी, (17) हरिश्चन्द्री, (18) साधनापन्थी (19) माधवी, (20) वैरागी और नगो संन्यासी।

शैवों के 7 बड़े भेद थे:-
(1) संन्यासी दण्डी आदि, (2) योगी, (3) जंगम, (4) ऊर्ध्वबाहु, (5) गूदड़, (6) रुखड़ (7)कड़ा लिंगी।

शाक्तों के बड़े भेद निम्नलिखित थे:-

(1) दक्षिणाचारी, (2) वामी, (3) कानचेलिये, (4) करारी, (5) अघोरी, (6) गाणपत्य, (7) सौरपत्य, (8) नानकपन्थी, (9) बाबालाली, (10) प्राणनाथी, (11) साध, (12) सन्तनामी, (13) शिवनारायणी, (14) शून्यवादी, (आर्य दर्पण जून 1880 ई.)।

तालिका यह दिखाने के लिए उद्धृत की गयी है कि 19वीं शताबदी के मध्य में हिन्दू धर्म का ढांचा

किस प्रकार बिगड़ चुका था। भेद बेढब बढ़ गए थे। अनाचार पूरे जोर पर था। धर्म की प्रेरिका शक्ति जाती रही थी।

भारत का प्राचीन आर्य धर्म इस सड़ांध की दशा में था जब देश पर चौथे विदेशी तूफान का आक्रमण हुआ। यूरोपियन जातियाँ आखेट-भूमि की टोह लगाती हुई भारत के समुद्र समीपवर्ती सीमाप्रान्तों पर आ पहुँचीं। उन्हें किस प्रकार देश में प्रवेश मिला, किस प्रकार देश की बिगड़ी हुई दशा ने उन्हें यहाँ आधिपत्य जमाने में सहायता दी, किस प्रकार अन्य शक्तियों को परास्त करके अंग्रेजों ने प्रभुत्व जमाने में सफलता प्राप्त की, यह सब विषय राजनीतिक इतिहास के हैं। हमें यहाँ यह देखना है कि यूरोपियन सफलता का प्रभाव भारत के धार्मिक विचारों पर किस प्रकार पड़ा। यूरोपियन जातियाँ अपने साथ चीजें लाईं- एक ईसाईयत और दूसरी पाश्चात्य सभ्यता। इन दोनों का भारत पर एक साथ प्रभाव हुआ। इस्लाम तलवार के साथ आया था, वह बड़े वेग से फैला, परन्तु उसका प्रतिरोध भी उसी वेग से हुआ। ईसाईयत का प्रचार दूसरी विधि से हुआ। उस विधि में शिक्षणालय, प्रचार का संगठन और प्रलोभन, ये तीन साधन प्रधान थे। ईसाइयों ने स्कूल और कॉलेज खोलकर भारत के शिक्षित समान को खा जाने का यत्न किया। कुछ कल तक उस यत्न में सफलता भी हुई। ईसाइयों का प्रचार सम्बन्धी संगठन पहले ही बहुत बढ़िया था, भारत के अनुभव से उसमें और भी अधिक पूर्णता आ गई। जो भारतवासी ईसाई बन गए, वे चाहे किसी भी दर्जे के हों, सरकारी नौकरियों में उन्हें तरजीह दी जाने लगी। इस प्रकार ईसाई धीरे-धीरे परन्तु निश्चित रूप से देश की गहराई में प्रवेश करने लगा।

जब तक इस्लाम का प्रचार तलवार के जोर से हाता रहा, हिन्दू धर्म भी उससे बचने के लिए अपने कोट के चारों ओर खाइयों खोदता रहा; परन्तु अकबर तथा उसके दो उत्तवर्ती राजाओं ने गहरे शान्त उपायों से इस्लाम की जड़ पाताल में पहुँचाने का उद्योग किया, तब ऐसे भक्तजन उत्पन्न हुए जिन्होंने हिन्दू-मुसलमानों के परस्पर भेदों को दूर करके एकेश्वरवाद के झंडे के तले लाने का यत्न किया। फिर जब औरंगजेब ने शान्त नीति का परित्याग किया, तब उत्तर और दक्षिण में हिन्दू धर्म तलवार लेकर खड़ा हुआ। यह स्मरण रखना चाहिए कि औरंगजेब की अनुदार धार्मिक नीति से पहले सिक्ख-मत भी हिन्दू-मुसलमान के भेद के मिटाने का ही एक यत्न था।

ईसाइयत का प्रचार अकबर की नीति के अनुसार शुरू हुआ। परिणाम भी वैसा ही हुआ। विश्वासी भारतवासियों के हृदयों ने बिना किसी आशंका के ईसाइयत के प्रभावों का स्वागत किया। कई बड़ी प्रतिष्ठा और योग्यता रखने वाले भारतवासी, जो शायद तलवारी धर्म का सामना करने में तलवार के घाट उतारने को सहर्ष उद्यत हो जाते, इस शान्त धावे के शिकार हुए। कुछ ही समय पीछे ईसाई-काल के कबीर भी जन्म लेने लगे। धर्म के विश्वरूप में ईसाइयत और हिन्दूपन के भेद को खपा देने का उद्योग बंगाल में ब्राह्मसमाज से उठाया। यदि ब्राह्मसमाज के इतिहास को विस्तार से पढ़े तो हमें प्रतीत होगा कि उसके नेताओं का उद्योग ईसाइयत और हिन्दू धर्म की मध्यमावस्था निकाल कर दोनों को साथ-साथ दीर्घजीवी बनाने के लिए था।

हिन्दूपन को ईसाइयत की कलम लगाकर उस रगर को दूर करने के लिए था, जिसका शीघ्र या देर में उत्पन्न होना अवश्यम्भावी था।

शान्त परन्तु गहरे और पेंचदार उपायों के ईसाइयत भारत के धार्मिक दुर्ग में प्रवेश कर रही थी। चारदीवारी के घिरने के कारण हवा गन्दी हो गई थी। पानी सड़ गया था, अन्न-कष्ट के कारण दुर्ग-निवासियों में फूट पड गई थी। दुर्ग की दशा को यदि संपेक्ष में कहना हो तो हम कहेंगे कि भारत के निज धर्म हिन्दू धर्म को रूढ़ि, और तुच्छ रोग लगे हुए थे। एक ओर बन्धन और रीति-रिवाज का जोर तथा दूसरी ओर तुच्छ भेदों के कारण एकता का नाश- ये दो रोग थे जिनसे भारत का धर्मरूपी शरीर पीड़ित हो रहा था। चुपचाप ईसाइयत के कीटाणु हवा और पानी के साथ उस शरीर में प्रवेश कर रहे थे। ब्राह्मसमाज ने इस दिशा का अनुभव तो किया परन्तु रोकने का जो यत्न किया, वह यह था कि ईसाइयत के कीटाणुओं से युक्त जल को कुछ स्वादु रूप दे दिया। इस उपचार से रोग दूर होगा या नहीं, कीटाणुओं से युक्त जल शरीर में प्रविष्ट होने से रुकेगा या नहीं, इन प्रश्नों का उत्तर हम नहीं देंगे, क्योंकि इतिहास दे चुका हैं।

यह दशा थी जब दयानन्द ने गुरु से विदाई ली।

आर्य- जो श्रेष्ट स्वभाव, धर्मात्मा, परोपकारी, सत्यविद्यादि गुणयुक्त और आर्यावर्त्त देश में सब दिन से रहने वाले हैं, उनको आर्य कहते हैं।

* * * *

जाति- जो जन्म से लेकर मरणपर्यन्त बनी रहे, जो अनेक व्यक्तियों में एक रूप से प्राप्त हो, जो ईश्वरकृत, अर्थात् मनुष्य, गाय, अश्व और वृक्षादि समूह हैं, वे जाति शब्दार्थ से लिये जाते हैं।

* * * *

यज्ञ - जो अग्निहोत्र से लेके अश्वमेधपर्यन्त शिल्प-व्यवहार और पदार्थ विज्ञान है, जो कि जगत् के उपकार के लिए किया जाता है, उसको यज्ञ कहते हैं।

शारदीय नवसस्येष्टि : दीपावली
श्रीमद्दयानन्द निर्वाण
कार्तिक बदि अमावस्या

शारदीय शुभ शस्य सुहाई, अद्‌भुत सुन्दरता सरसाई।
मुद्‌ग, माष, तिल, शालि चुलाई, जन-मन भरते मोद-बधाई।।
लिपे पुते घर हैं छवि छाये, दीपावलि की ज्योति जमाये।
नवान्नेष्टि सज्जन करते हैं, शुद्ध गन्ध घर-घर भरते हैं।।
थल-थल में रम रही रमा है, सदन-सदन सुसमृद्धि सना है।

(श्री सिद्धगोपाल कविरत्न)

आनन्द सुधासार दया कर पिला गया। भारत को दयानन्द दुबारा जिला गया।
''शंकर'' दिया बुझाय दिवाली देह का। कैवल्य के विशाल-वदन में बिला गया।।

(कविवर नाथूराम 'शंकर')

आज शरद्‌ऋतु की समाप्ति में केवल पन्द्रह दिन शेष हैं। पन्द्रह दिन पीछे सर्वत्र हेमन्त ऋतु का राज्य होगा और शीत का शासन सबको स्वीकार करना होगा। वर्षा के बीतने और शोत लगने पर जनता को कुछ विंशेष समारम्भ (तैयारियाँ) करने पड़ते हैं। वर्षा ऋतु में वृष्टिबाहुल्य से वायुमंडल तथा घर बार विकृत, मलिन और दुगन्धित हो जाते हैं। बरसात के अन्त में उनकी संशुद्धि और स्वच्छता की आवश्यकता होती है। वायुमंडल का संशोधन हवन-यज्ञ से होता है और घर बार की स्वच्छता लिपाई-पुताई से की जाती है। अब ही भावी शीत निवारण के लिए गरम वस्त्रों का प्रबन्ध करना होता है। इसी समय सावनी की फसल का आगमन होता है। किसान के आनन्द की सीमा नहीं है। उसका घर अन्न-धान, माष, मूंग, बाजरा, तिल और कपास से भरपूर होने को है। इस अवसर पर श्रौत और स्मार्त सूत्रों में गोभिलगृह्यसूत्र, तृतीय प्रपाठक, सप्तमखण्ड, ७-२४ सूत्र, पारस्करगृह्यसूत्र द्वितीय कांड १७वीं कण्डिका, १-१८ सूत्र, आपस्तम्बीय गृह्य सूत्र १९ खण्ड मानव गृह्य सूत्र तृतीय खण्ड तथा मनुष्मृति के-

सस्यान्ते नवसस्येष्ट्या तथर्त्वन्ते द्विजोऽध्वरैः। 4 अध्याय ४ श्लोक २६

इस पद्य में नवसस्येष्टि वा नवान्नेष्टि (नव=नवीन सस्य=फसल वा खेती-इष्टि=यज्ञ, अर्थात् नवीन फसल के अन्न का यज्ञ) करने का विधान है। इन सब कार्यों के लिए पर्व कार्तिजक वदि अमावस्या तिथि प्राचीन काल से नियत चली आती है उसको दीपावली भी कहते है। वैसे तो प्रत्येक अमावस्या को दर्शेष्टि यज्ञ कर्मकाण्ड ग्रन्थों में विहित हैं, किन्तु कार्तिकी अमावस्या को दर्शेष्टि और नवसस्येष्टि दोनों दृष्टियों के विधान हैं, क्योंकि उनसे इस अवसर पर वर्षा ऋतु में विकृत वातावर्त की विशेष संशुद्धि अभीष्ट

है। वर्षा के अवसान पर दलदलों के सड़ने, मच्छरों के आधिक्य तथा आर्द्रता (नमी) के कारण ऋतुज्वर (मौसमी मलेरिया बुखार) आदि रोग बहुत फैलते हैं। इसलिए इस ऋतु के शारदीय पूर्णिमा, विजयादशमी और दीपावली इन तीन पर्वों के होम, यज्ञों से उन रोगों का अनागत प्रतिकार भी अभिप्रेत है।

जैसे शारदीय आश्विन पूर्णिमा की चांदनी वर्ष भर की बारह पौर्णमासियों में सर्वोत्कृष्ट होती है, उसी प्रकार कार्तिकीय अमावस्या का अंधकार वर्ष की बारह अमावस्याओं में सघनतम होता है। इस अमावस्या के अ धकार पर मृच्छकटिककार शूद्रक कवि की निम्नलिखित उक्ति पूरी उतरती है:-

लिम्पती व तमो ऽगांनि, वर्षतीवाञ्जनं नभः।

असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता।।

अर्थ- अन्धियारी अंगों पर पुत-सी गई है, आकाश अंजनसा बरस रहा है, दृष्टि शक्ति इस प्रकार निष्फल (बेकार) हो गई है, जिस प्रकार असज्जन की सेवा व्यर्थ जाती है।

ऐसी घनी अन्धियारी रात्रि में, नवीन सावनी सस्य के आगमन से प्रमुदित कृषि प्रधान भारतवर्ष में मानो वर्ष की प्रथम उक्त सस्य (फसल) के स्वागत के लिए दीपमाला का उत्सव मनाया जाता है। यह दीपमाला भी गृहों की वर्षाकालीन आर्द्रता के संशोषण से उनके संशोधन में सहायक होती है।

आज राजप्रासाद से लेकर रंककुटीर तक की शोभा अपूर्व है। प्रत्येक नगर और ग्राम का प्रत्येक आर्य घर-परिमार्जन और सुधा (कली और चूना) वा पिंडोल मृत्तिका के लेपन से श्वेत रूप धारण किए हुए हैं। प्रत्येक अट्टालिका, आंगन और कक्ष्या (कोठरी) में दीपपंक्ति जगमगा रही है। धनियों क बहुमूल्य काचमय प्रकाशोपकरणों (झाड़ फानूस आदि शीशे आलाय) से लेकर दीनों के दीवलों (मृण्मय तेल के छोटे-छोटे दीपकों) तक की कृत्रिम ज्योति प्रकृति के प्रगाढ़ान्धकार से स्पर्द्धा (होड़ा होड़) कर रही है। पुरुषोत्तम प्रिया के कृपापात्रों के भवन दनाना व्यञ्जनों और विविध मिष्ठानों की सरल सुगन्ध से परिपूर्ण हैं, तो लक्ष्मी के कृपाकटाक्ष से वञ्चित दीनालय धान्य की खीलों से ही सन्तुष्ट हैं। संक्षेपत: आज प्रत्येक आर्य परिवार ने अपने गृह को स्ववित्तानुसार मनोहर बनाने का भरपूर प्रयत्न किया है।

आज वर्ष के प्रथम शस्य-श्रावणी शस्य के शुभागमन के अवसर पर गृहों को शोभा और समृद्धि के आवासयोग्य बनाना स्वाभाविक और समुचित ही था, यही लक्ष्मी की पूजा थी, क्योंकि पूजा का वास्तविक भाव योग्य को योग्य स्थान का प्रदान ही है। आज नवशस्य के शुभागमनावसर पर शोभा और समृद्धि को उसका योग्य स्थान प्रदान-शोभा की समुचित स्थान और अवसर पर स्थापना ही उसकी वास्तविक पूजा है। किन्तु तत्व के परित्याग और रूढ़ि की आरूढ़ता के युग पौराणिक काल में लक्ष्मी की पूजा का यह तत्वांश अन्तर्दृष्टि से तिरोहित हो गया और उसके स्थान में उल्लूकवाहना की षोडशोपचारपूजा प्रचलित हो गई। उसके वाहन (मूढ़ता के साक्षात् स्वरूप उल्लू महाराज) ने उसके उपासकों की बुद्धि पर ऐसा अधिकार जमाया कि वे अपनी उपास्य देवी के पदार्पण की प्रतीक्षा में दिवाली की सारी रात जागरण (रतजगा) करते

हैं। प्राय: बुद्धिविशारद भक्त शिरोमणि तो निद्रा अपसारण के लिए रात्रि भर द्यूतक्रीड़ा में रत रहते हैं। मन:कल्पित लक्ष्मी की प्रतीक्षा करते हुए भी साक्षात् लक्ष्मी (धन सम्पत्ति) को वे द्यूत द्वारा दुतकारते हैं- तिरस्कार पूर्वक उसको घर से धक्का देते हैं- "अक्षैर्मा दीव्य:" इस अथर्ववेद की कल्याणी वाणी का प्रत्यक्ष प्रतिवाद व ा अनादर करते हैं।

"आज कल के कलि काल में वैदिक कालीन पर्व शारदीय नवसस्येष्टि तथा दर्शेष्टि का तो सर्वथा लोप हो गया है और केवल उसके बाह्य आडम्बर गृहपरिशोधन परिमार्जन, दीप पंक्ति प्रकाशन, मिष्टान्न तथा लाजा वितरण और घोर अविद्यान्धकार काल में प्रचारित द्यूत, दुराचार आदि उसके अनुषंगिक उपचार शेष रह गये हैं। नबान्नेष्टि के चिह्न होम तक की परिपाटी प्राय: उठ गई है। शायद ही किन्हीं बिरले सौभाग्यशाली गृहों में आज की रात्रि में होम होता होगा। हां, कहीं-कहीं गुग्गुल धूप जलाने की रीति अवश्य प्रचलित है, जो प्रशंसनीय है।

दीपावली के विषय में भी विजयादशमी के समान यह एक कल्पित कथा चल पड़ी है, कि इस दिन मर्यादापुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र वनवास से लौट कर अपनी राजधानी अयोध्या में वापिस आए थे और उनकी प्रजा ने उस हर्षोत्सव के उपलक्ष्य में आज दीपावली की थी। उसका अनुकरण वर्तमान दीपावली चली आती है। विजयादशमी के विवरण में इस प्रसंग के उल्लिखित ऊहापोह से भले प्रकार प्रकट होता है कि यह विचार भी सर्वथा कपोलकल्पित है, क्योंकि श्री रामचन्द्र जी रावणवध और लंका विजयानन्तर के तत्काल बाद ही अयोध्या लौट आए थे और जब उक्त विवेचनानुसार रावणवध फाल्गुन वा वैशाख में हुआ था तो श्री रामचन्द्रजी का अयोध्या प्रत्यागमन कार्तिक मास में किस प्रकार सम्भव है? प्रतीत हाता है कि दीपावली की दीपमाला के प्रकाश से भी रामचन्द्र के अयोध्या-प्रत्यागमन के हर्षोत्सव की कल्पना किसी कल्पनाकुंज मस्तिष्क में हुई हो और उसी से यह दन्तकथा सर्वसाधारण में प्रचलित हो गई हो। वैदिक धर्मावलम्बी आर्य सामाजिक महाशयों का परम कर्त्तव्य है कि जहाँ वे इस प्रकार की ऐतिहासिक तत्व की तिरोधायक कपोलकल्पनाओं का निरसन करें, वहां शारदीय नवसस्येष्टि के वैदिक पर्व का प्रत्यावर्तन करके, उसके गृहसंशोधन और दीपावली प्रकाशन आदि अनुषंगों के सहित आगे पद्धति प्रदर्शित प्रकारानुसार उसके स्वरूप का आर्य जनता में प्रचार करें।

आर्यों का एक-एक पर्व किसी विशेष कृत्य के लिए उद्दिष्ट है और इस प्रकार उसका सम्बन्ध किसी न किसी एक विशेष वर्ग के साथ स्थापित है। जिस प्रकार वैदिक धर्म की चातुर्वर्ण्य और चतुराश्रमव्यवस्था चराचर जगत् में व्याप्त है, उसकी व्याप्ति केवल मनुष्यमात्र में ही नहीं है, प्रत्युत तिर्यग्योनियों और उद्भिजों में भी गुणकर्मानुसार वर्ण और आश्रम विद्यमान हैं- पशुओं में गौ और वनस्पतियों में अश्वत्थ (पीपल) ब्राह्मण वर्ण के अन्तर्गत हैं। इसका विषय यहाँ अधिकतर विस्तार, प्रकरणान्तर-प्रवेश का दोषावह होगा- इसलिए संकेतमात्र इतना ही पर्याप्त है-इसी प्रकार आर्यों के पर्वों में

भी चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था पाई जाती है। श्रावणी उपाकर्म, स्वाध्याय से सम्बद्ध होने के कारण ब्राह्मण पर्व है। लोक में भी श्रावणी (सलूनो) ब्राह्मणों का पर्व कहलाती है। विजयादशमी क्षत्रियों का दिग्विजय यात्रा और क्षात्रधर्म के विकास से सम्बन्ध रखने के कारण क्षत्रिय पर्व है और जनसाधारण भी उसको क्षत्रियों का पर्व कहते हैं। शारदीय नवसस्येष्टि वा दीपावली के पर्व का विशेष सम्बन्ध वैश्य कर्म (कृषि, वाणिज्य और उनकी अधिष्ठात्री समृद्धि देवी लक्ष्मी) से है, इसलिए दीपावली वैश्य पर्व है और लोग भी उसके प्रकरण में यथास्थान होगा। दीपावली के अवसर पर, जैसा कि ऊपर दिखलाया जाचुका है, नवीन सावनी-सस्य के अन्न से होम होता है, नवीन अन्न की लाजा (खीलें) और मिष्ठान बाँटे जाते हैं। इसी अवसर पर व्यवसायी जन अपने बहीखातों का नवीन वर्ष आरम्भ करते हैं। आढ़त की दूकानों पर नए बहीखाते दीपावली से ही बदले जाते हैं। यह सब बातें इस पर्व का वैश्यत्व पूर्णरूपेण स्थापित करती हैं। परन्तु जिस प्रकार चारों वर्ण और उनके गुण, कर्म मुख्यत: पृथक्-पृथक् होते हुए भी, गौण रूप से एक दूसरे के गुण कर्मों का समावेश चारों वर्णों में रहता है- ब्राह्मण वर्ण की सम्पत्ति स्वाध्याय, क्षत्रिय वर्ण की शूरता, वैश्य की समृद्धि और शूद्र का सेवा धर्म न्यूनाधिक चारों वर्णों के पुरुषों में पाया जाता है- उसी प्रकार हमारे पर्व भी विशेष धर्म से सम्बन्ध रखते हुए भी सर्वसाधारण के सम्मिलित (सांझ के) पर्व भी हैं।

किन्तु इस दीपमाला की महारात्रि का महत्व एक महा घटना ने और भी बढ़ा दिया। इसी के सांयकाल विक्रमी सं. 1940 तद्नुसार 30 अक्टूबर सन् 1883 ई. मंगलवार को वीर विक्रम की 20वीं शताब्दी के अद्वितीय वेदोद्धारक और वर्तमान आर्यसमाज के संस्थापक आचार्य महर्षि दयानन्द की उच्च आत्मा ने इस नश्वर शरीर का परित्याग करके जगज्जननी के क्रोड में आश्रयण का आनन्द प्राप्त किया था। महापुरुषों का देहावसान साधारण मनुष्यों की मृत्यु के समान शोकजनक और रुलाने वाला नहीं होता। उनका प्रादुर्भाव और अन्तर्धान दोनों ही लोककल्याण और आनन्द प्रदान के लिए होते हैं। महापुरुषों का इस लोक में आगमन वो लोकाभ्युदय के लिए प्रत्यक्ष ही है। किन्तु उनका इहलोक लीला संवरण भी आनन्द का हेतु होता है। वे परोपकार में अपने प्राणों को अर्पण करते हैं। संसार के सुख के लिए अपने शरीर की बलि देते हैं, इसलिए जनता उनके बलिदान पर उनकी कीर्ति का कीर्तन और गुणगान करके एक प्रकार का आनन्दानुभव करती है। उनका बलिदान स्वयं जनता के लिए परोपकारार्थ देहोत्सर्ग का उत्तम आदर्श स्थापित करके, जनता में अनुकरण, उदाहरण तथा सत्संप्रदाय का प्रवर्तन और सुख का संयोजन करता है। इस पाञ्चभौतिक शरीर को त्यागते हुए उनकी आत्मा स्वयं भी सन्तोष और आनन्द लाभ करती है। सन्तोष इसलिए कि वे अपने इस लोक में आने का उद्देश्य पूर्ण करते हुए अपने इस लोक के जीवन को परोपकार में विसर्जन कर रहे हैं और आनन्द इसलिए कि उनका जीवात्मा प्राकृतिक बन्धनों से मोक्ष पाकर परम पिता के संसर्ग का संयोग प्राप्त कर रहा है और साथ ही अपने प्रभु की इच्छा को पूर्ण कर रहा है। ''प्रभो तेरी इच्छा पूर्ण हो'' महर्षि दयानन्द के अन्तिम शब्द यही थे। किसी उर्दू कवि ने कहा है-

"राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है।"

इसलिए वैदिक धर्मावलम्बी आर्यों में मोहम्मदियों केसमान महापुरुषों के अन्तर्धान की स्मारक तिथियों पर शोकातुर होने वा रोने-पीटने की रीति नहीं है, प्रत्युत इन अवसरों पर उनकी गुणावली गाकर आत्मा में आनन्द का संचार किया जाता है। सिक्खों, कबीर पन्थियों, दादूपन्थियों आदि सनातन धर्मी आर्य सनतान (हिन्दुओं) के अन्य सम्प्रदायों में भी अपने धर्मसंस्थापक गुरुओं के चोला छोड़ने के दिन भण्डारा चलाने की रीति है जिसमें उनके शब्दकीर्तन करने और कड़ाहप्रसाद बाँटने का आनन्द मनाया जाता है और शोक लेशमात्र भी नहीं होता। फलत: आर्य जाति में शोक प्रदर्शनार्थ कोई भी पर्व नहीं है, न ही शोक प्रदर्शन में किसी पर्वता (उत्सवता) का होना सम्भव है। अतएव मृत्यूत्सव, शोकोत्सव वा शोकपर्व पद ही असंगत और असम्बद्ध हैं। आर्यों के यहाँ किसी भी महात्मा के भौतिक देह-त्याग के दिन को पुण्य-तिथि (पवित्र तिथि), निर्वाण दिन वा अन्तर्धान-दिवस कहते हैं।

अत: आज महर्षि दयानन्द के गुणानुवाद का अवसर उपस्थित है। महर्षि दयानन्द के आर्य जनता पर इतने असंख्य और अनन्त उपकार हैं कि सादृश क्षुद्र लेखकों की निर्बल लेखनी उनके लिखने में असमर्थ है। जिस प्रकार समुद्र की विस्तृत बालुका में असंख्य और अनन्त कण होते हैं और जिस प्रकार दिनकर की किरणावली की गणना नहीं हो सकती, उसी प्रकार महापुरुषों की भी गुणावली गणनातीत और महिमा अप्रमेय होती है। विचारक उस पर विचार और मनन करते रहते हैं। कवि उसका कीर्तन करते रहते है। गायक उसके गान से स्वरसना को रसवती और पवित्र करते रहते हैं और संसारी जन उनसे शिक्षा ग्रहण करके अपना जन्म सुधारते रहते हैं। सच पूछिये तो इस संसृति-सागर में महात्माओं की चरितावली ही तरणी है और उनके आदर्श कर्म ही ज्योतिस्तम्भ हैं, जो भूले-भटके बटोहियों को मार्ग दिखलाते और पार लगाते हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र की जीवनी न जाने कितने कवीश्वरों के वाग्विलास का विषय बनी है। संस्कृत और हिन्दी काव्यों का प्रचुर भाग श्री रामचन्द्र के गुणानुवाद से ही व्याप्त हैं। रामकथा ने न जाने कितने पथिकों को सत्पथ दिखलाया है।

योगिराज श्री कृष्ण की भगवद्गीता का कर्मयोग सहस्रों आलसियों और उदासियों को कर्ममार्ग में प्रवृत्त करके कर्मण्य और कर्मवीर बना रहा है। भगवान् तथागत का जीवन करोड़ों नर-नारियों और राव-रंकों के लिए शान्तिप्रद बना है। कहाँ तक गिनाएँ, संसार की सिरमौर भारत-वसुन्धरा तो ऐसे अनेक महात्माओं के गुणगान से गुञ्जायमान है।

ऊपर कहा जा चुका है कि आज हमारे लिए भी एक महात्मा के गुणगान से अपने कर्णकुहरों को पवित्र करने और उनसे शिक्षा ग्रहण करने का सुयोग पुनरपि प्राप्त है। आओ, आज आचार्य दयानन्द के पवित्र चरित्र की कुछ विशेषताओं पर विचार करके उपने समय का सदुपयोग करें।

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर में 133 वॉं ऋषि स्मृति सम्मेलन सम्पन्न

महर्षि दयानन्द सरस्वती भवन न्यास जोधपुर में आयोजित 133 वॉं चार दिवसीय ऋषि स्मृति सम्मेलन 29 सितम्बर 2016 को प्रातः 7:15 बजे ध्वजारोहण स्वामी धर्मानन्द जी महाराज (आबू पर्वत), आचार्य सत्यानन्द जी वेदवागीश, पूर्व महापौर डॉ0 खेतलखानी, न्यास के मंत्री आर्य किशनलाल गहलोत, वरिष्ठ न्यासी श्री जयसिंह जी पालड़ी, विद्वान डॉ0 रामपालजी जयपुर के साथ अन्य न्यासियों व आर्यजनों की उपस्थिति में हुआ।

प्रातःकालीन सत्र में वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् आचार्य सत्यानन्दजी वेदवागीश के ब्रह्मत्व में ऋग्वेद पारायण यज्ञ किया गया। यज्ञोंपरान्त आयोजित परम आनन्द का स्रोत परमात्मा विषयक सम्मेलन के आरम्भ में सहारनपुर से पधारी कु0 वैशाली एवं आर्य जगत के प्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री दिनेशदत्त आर्य के सुमधुर भजन सुनने को मिले।

स्रोताओं को संबोधित करते हुए जयपुर निवासी आर्य विद्वान् डॉ0 रामपालजी विद्याभास्कर ने सामवेद के 521 वें मन्त्र को उद्धृत करते हुए बताया कि संसार के आनन्ददायक पदार्थों का दाता परमात्मा ही है। वह सच्चिदानन्द परमात्मा ही अनन्त आनन्द का दाता है, उसके अलावा अन्य कोई भी अनन्त आनन्द का स्रोत नहीं है। जिसे परमात्मा वरण करता है, उसे उसके हृदयाकाश में दर्शन देता है। अतः परम आनन्द के दाता परमात्मा से आनन्द प्राप्त करने हेतु पूर्ण पुरुषार्थ के साथ ईश्वरीय व्यवस्था पर अटल विश्वास रखते हुए निष्काम भाव से कर्म करें तो दुःख तो होगा ही नहीं, आनन्द का अभाव ही होगा। बंधन में कुण्डी बाहर से लगी होती है, यदि हम कुण्डी को भीतर अपने नियंत्रण में लगा ले तो मुक्ति की ओर जा सकते है ।

ऋषि स्मृति सम्मेलन में आचार्य सत्यानंदजी वेदवागीश के ब्रह्मत्व में ऋग्वेद पारायण यज्ञ जारी रहा। आचार्य ने अपने व्याख्यान में मुख्य विषय भारत की धर्म विमुखता को रखा । उन्होंने धर्मग्रंथ के नाम पर बेसिर पैर की बातों की धज्जियॉं उडाते हुए आश्चर्य किया कि किस तरह के गप्पोडे लोग धर्म मानकर सुनते व मानते चले जाते हैं । अहिंसा परमोधर्म को उन्होंने रेखाकिंत किया । अज्ञान पर वार करते हुए आचार्य जी ने कहा कि पूरे महाभारत में राधा नाम की दो महिलाओं का वर्णन है , एक तो सारथी अधिरथ की पत्नी , जिनके द्वारा पाले गये कर्ण को राधेय नाम मिला । दुसरी राधा एक तपस्विनी है । इस बात पर कि मिथ्या बात को अधिकांश लोग क्यों मानते है - आचार्य जी ने कहा कि सत्य बहुमत से निरपेक्ष होता है ।

उदाहरण दिया कि दुनिया के छः करोड लोग एक प्रमाणिक असत्य को गले लगाये रखते हैं । जुलियस सीजर व आगस्तस ने दो महीने कलेण्डर के बीच में जोडे इस कारण पहले के सातवें

, आठवें, नवें व दसवें माह कमशः नवें, दसवें, ग्यारहवें एवं बारहवें मास बन गये । किन्तु आज भी उनके नाम का अर्थ सातवां, आठवां, नवां एवं दसवां है । यह झूठ को गले लगाने की बात है

आचार्य जी ने सत्यार्थ प्रकाश को भारत की धर्म विमूखता की सर्वोत्तम ओषधी एवं महर्षि दयानन्द को वैद्य बताया । सुखी समाज के उपाय बताते हुए आचार्य वेदवागीश ने कहा – समाज की इकाई परिवार और व्यक्ति है । परिवार की इकाई व्यक्ति है । परिवार में बच्चों के संस्कार ध्यान रखें । युवाओं को ब्रह्मचर्य , संयम व पूरूषार्थ से युक्त रखें, बुजुर्ग लोग भी अपना आचरण सुधारें । परिवार में सुधार के बाद पडोसियों से एवं समाज के अन्य लोगों से अच्छा व्यवहार बनायें । आचार्य जी ने अपने अनुभवों व संस्मरणों से श्रोताओं को लाभान्वित किया ।

अपने व्याख्यान को डॉ.रामपाल विद्याभास्कर ने रोचक कथा से आरम्भ करते हुए कहा कि सृष्टि के आरम्भ में मानव में सद्गुण थे, दूर्गुण नहीं । वेदज्ञान के क्षीण होने से सद्गुणों का नाश हुआ व दुर्गुण पनपे जिससे भारत ही नहीं विश्व भी रोगी हुआ , इलाज तो इसका वेद-धर्म ही है । किन्तु व धर्म प्रखर हो । इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि यदि समाज में पीडा है, शोषण है, अत्याचार है, भेदभाव है और इसी समाज में अपने आपको धार्मिक कहने वाले व्यक्ति यज्ञ करते हैं, सन्ध्या करते हैं या चर्च में घण्टिया बजाते हैं या मन्दिर में घण्टे घडियाल या अजान-नमाज अदा करते हैं - ये सब के सब निरर्थक है , यदि ये लोग धर्मात्मा है तो उक्त बुराईयों को क्यों सहन करते हैं । सहन करना अर्थात् पूरूषार्थ से भागना ।

सम्मेलन में सुखी समाज के लक्ष्य के साथ ईश्वर भक्ति, समाज सुधार, वेद महिमा एवं महर्षि दयानन्द को समर्पित भजन पं.दिनेशदत्त जी ने प्रस्तुत कर श्रोताओं को झकझोरा भी और भावविभोर भी किया ।

ऋषि स्मृति सम्मेलन में वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् वयोवृद्ध आचार्य सत्यानन्द जी वेदवागीश के ब्रह्मत्व में ऋग्वेद पारायण यज्ञ चौथे दिन भी जारी रहा । यज्ञोपरान्त आचार्यजी द्वारा, मन, धन से न्यास को सहयोग करने वालो और महर्षि के कार्यो को आगे बढ़ाने में सहयोग करने वालों का स्मृति चिह्न देकर उत्साहवर्द्धन किया गया ।

कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में पधारे जोधपुर के लोकसभा सांसद श्री गजेंद्र सिंह जी उपस्थित आर्यजनों को संबोधित करते हुए कहा कि पाश्चात्य प्रभाव से धूमिल होती, पुरोहित वर्ग और पाखंड रूपी राख से दबी सांस्कृतिक अग्नि स्वामी दयानंद ने पुनः प्रज्ज्वलित की । उन्होंने देश के उत्थान के लिए देश के सभी नागरिकों से आह्वान किया कि वे देश को आगे बढ़ने के लिए काम करें क्योंकि कोई भी सरकार मात्र, बिना जन सहयोग से देश को आगे नहीं बढ़ा सकती । अगले न्यूनतम 10 वर्ष तक अपने अपने कार्य को देश को आगे बढाने के संकल्प

के साथ ही करें। आर्यों की यह जिम्मेवारी देश के अन्य लोगों से ज्यादा है। सांसद महोदय ने जोधपुर की विभिन्न आर्यसमाजों के कर्मठ कार्यकर्ताओं को स्मृति चिह्न देकर सम्मानित किया।

युवा सम्मेलन को संबोधित करते हुए आचार्य सत्यानन्द जी वेदवागीश ने तीन बाते उत्तम युवकों के निर्माण के लिए आवश्यक बताई- प्रथम बचपन में वीरत्व की घुट्टी देकर वीर बनाना, सिर कटाने का नहीं, वरन् पापियों और आक्रान्ताओं के सिर काटने का समय लेना और तृतीय देश की गरिमा का हमेशा ध्यान रखना। डॉ.रामपाल विद्याभास्कर ने महर्षि दयानन्द प्रणीत व्यवहारभानु नामक पुस्तक से शेख चिल्ली की कथा से ने युवकों को महत्त्वाकांक्षी के बजाए पुरुषार्थी बनने को कहा। उन्होनें वेदमंत्र को उद्धृत करते हुए कहा कि युवकों को अव्रती नहीं रहना चाहिए। व्रत से समाज व राष्ट्र भी लाभान्वित होते है। युवकों के पथभ्रष्ट होने के लिए अन्य परिजन भी जिम्मेवार है। बचपन से ही संवादहीनता बढ़ते किशोर को युवावस्था तक पथभ्रष्ट कर देती है। पं.दिनेशदत्त जी न उरी के शहीदों को श्रद्धांजलि देते हुए -नमन उन शहीदों को जो खो गए, वतन को जगाकर वो खुद सो गए- तथा -हँसते हँसते जिया करें वो ही नौजवानी होती है, देश धर्म पर मरें जो उनकी अमर निशानी होती है- से युवकों को प्ररित किया। युवा सम्मेलन का कुशल संचालन मुक्केबाजी प्रशिक्षक श्री विक्रमसिंह ने किया।

नारी सम्मेलन में आशीर्वचन प्रदान करते हुए आचार्य सत्यानन्द जी ने उत्कृष्ट स्नेह वाली सच्ची घटनाएं सुनाते हुए कहा कि विषेशतः पति पत्नी और घर के सभी सदस्यों में परस्पर अपार स्नेह व त्याग की भावना होनी चाहिए। पति पत्नी के लिए और पत्नी पति के लिए स्वयं को बदलने को भी तैयार रहे। परिवार निश्चित रूपसे स्वर्ग बनेगा। इसी सम्मेलन में अपने -सास बहू को बेटी मानेए बहू सास को माँ, जी माता, घर को स्वर्ग बना देंगे फिर इन दोनो का नाता- जैसे प्रेरक गीतों से परिवार को स्वर्ग बनाने के साधन बताते हुए नारी को प्रिय दर्शन बनने का संदेश दिया न कि अंग-प्रदर्शन करने का। नारी उत्थान हेतु महर्षि दयानन्द सरस्वती के अमर उपकारों को नमन् करते हुए गीत-सब पै जताउँ, बड़ें प्रेम से बताउँ, जन जन को सुनाउँ, ऋषि की मेहरबानियाँ...- ऋषि को समर्पित किया। नारी सम्मेलन में माता सुनन्दा मुनि, श्रीमती मंजु अवस्थी, श्रीमती चन्द्रा जसमतिया, श्रीमती कान्ता देवी जी तोषनीवाल, श्रीमती कंचन जसमतिया, श्रीमती मालती त्रिपाठी, कुमारी वैशाली, अदिति आर्या, दिव्या आर्या, प्रज्ञा आर्या, भूमिका आर्या, वंदना देवड़ाए यशस्विनी गहलोत, विनोद गहलोत, रेखा सहित बहुत सी माताओं, बहनों और बेटियों ने अपने विचार और भजन तथा गीत प्रस्तुत किए। समय को आधा घण्टे बढ़ाने पर भी बहुत सी माताओं बहनों को समय नही दिया जा सका। महिला सम्मेलन की अध्यक्षता माता शोभा जी आसेरी ने की और श्रीमती रूपवती देवड़ा ने सम्मेलन का कुशल संचालन किया।

सम्मेलन के अंतिम दिन "राष्ट्र के प्रति समर्पित युवक का निर्माण" में विचार व्यक्त करते हुए उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान ने कहा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज नेजिन बातों के लिए आन्दोलन कर लोगों को जगाया, प्रगतिशील लोग उनको अपना रहा है।

सम्मेलन में न आने वाले ऋषि भक्तों से प्रार्थना है कि अगला सम्मेलन जब भी हो आप जरूर-जरूर पधार कर तन, मन, धन से सहयोग करें । यह पवित्र स्थान है जहां ऋषि दयानन्द सरस्वती ने साढ़े चार महिने गुजारते हुए अपने चरणों से पवित्र की, वहा नमन करना प्रत्येक ऋषि भक्त का कर्तव्य बनता है । यह स्थान बाहर महिने खुला रहता है व आप कभी भी आ सकते है, सब सुविधा का ध्यान हमारे द्वारा रखा जायेगा ।

सम्मेलन के अंत में महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास के मंत्री श्री किशनलाल जी गहलोत ने सम्मेलन में पधारे सभी अतिथियों, एवं आर्यो का आभार प्रकट किया, न्यास के अध्यक्ष श्री विजयसिंह भाटी ने भी सभी को धन्यवाद ज्ञापित किया एवं ऋषि के मार्ग पर चलने का आह्वान किया ।

नोट :-चित्र कवर पेज नं. 2, 3 पर देखें ।

अपाहिज व बेसहारा गौधन की रक्षार्थ जोधपुर की प्राचीनतम महर्षि दयानन्द गौशाला, मण्डोर

—आर्यसमाज जोधपुर रातानाड़ा के अन्तर्गत

यह गौशाला जोधपुर की 104 वर्ष पुरानी गौशाला है इसमें गायों की देखभाल उचित ढंग से की जाती है आप भी अपना समय एवं दान देकर पुण्य के भागीदार बन सकते हैं । अत: आप द्वारा दिया गया दान 80जी के तहत छूट प्राप्त है । आप एवं अपने सहयोगियों से गौशाला में दान देकर 80जी की छूट प्राप्त कर लाभ प्राप्त कर पुण्य के भागीदार बन सकते हैं ।

U Co Bank A/c 05630110041192
मण्डोर ब्रांच
IFSC UCBA0000563

सचिव
दुर्गादास वैदिक

गतांक से आगे

दयानन्द बावनी

(श्री दुलेरायकारणी)

शुद्धि

खुले रखे द्वार, धर्म छोड़ जाने वाले काज,
आने वाले काज, दोष दीनो है अशुद्धि को;
अति मतिमन्द अन्ध, धर्म अधिकारी भये,
कुबुद्धि के धारी भये, बेच मारी बुद्धि को;
ज्ञानी बन ज्ञान के घमंड में गंवाय दीनो,
'काराणी' कहत, सारे देश की समृद्धि को;
ऐसी विपरीत, आर्यावर्त की विपत देख,
स्वामीजी ने सत्य समजाय दीनो शुद्धि को;(१७)

अधर्म–अन्धकार

धर्म गयो धरणी में, आ गयो अधर्म युग,
पाप परितापन में,भारत बेजार था;
तान्त्रिकों का तन्त्र मन्त्र, वाममार्ग का विहार,
पूर्ण पोपलीला का, प्रसार पारावार था;
दुष्ट को न दण्ड था,उद्दण्ड को घमंड था,
प्रचण्ड खण्ड रूप में,पाखण्ड का प्रचार था;
बैर था,विकार था, धिक्कार भरा भारत में,
खड़ा द्वार द्वार अविधा का अन्धकार था;(१८)

न तस्य प्रतिमा अस्ति

लोगों ने बनाई, प्रभुप्रतिमा पूजन काज,
अपनी अपूर्णताएँ, उनमें लगाई हैं;
प्रतिमा को लगे भूखप्यास शीत–ताप लगे,
सोने जगाने के लिये, घंटी बजाई है;
'काराणी' कहत जड पत्थर के पूजन तें,
तन–मन–जीवन में, जडता जमाई है;
चेतन के चन्द दयानन्द ने दिखाय दीनो,
'न तस्य प्रतिमा अस्ति',ये वेद की दुहाई है(१९)

कलिकाल

नेह भयो नष्ट, अवशेष कष्ट–क्लेश भयो,
देश में विशेष भयो, विष बहेम–व्याल को;

धर्म दूर–दूर भयो,अधर्म को पूर भयो,
धूरत असुर भयो, क्रूर कलिकाल को;
'काराणी' कहत , सूसमर्थ वेदों वाले तूने,
काट डाले काले कलि–कपट के जाल को;
दीन को दयानन्द भयो, दुष्ट–।देल साल भयो,
भारत को लाल भयो, काल महाकाल को;(२०)

बानी में भवानी है

काले कर्मचारियों के, काल की कमान जैसी,
जुग की जुबान, रामबाण तेरी बानी है;
केते केते कोटि पाप–पाखण्डों को काटिबे को,
तेरी बानी तेग, ताको तेजदार पानी है;
बानी महारानी हिन्दी, मंदी थी मनाती ताको,
तूने ही पिछानी, तेरे स्नेह तें सोहानी है;
अविद्या–असत असुरन के बिदारिबे को,
तेरी वज्र–गर्जना सी,बानी में भवानी है;(२१)

दोन दया–आनन्द को, एक दयानन्द तू,
ब्रह्मचर्य–पुष्ट तेरे देह का अदम्य तेज;
वीर आर्य–धर्म का, प्रचण्ड मार्तण्ड तू,
काम,क्रोध,लोभ,मोह,मत्सर में मन्दअति;
सारे आर्यावर्त के उत्कर्ष में अमन्द तू,
प्रतिमा प्रभाव–वन्त शान्त–दाना सोम्य सन्त;
'काराणी' कहत, ऋतु शरद को चंद तू,
दया को आनन्द तू, कि आनन्द की दया तू;
कि दीन दया आनन्द को एक दयानन्द तू,(२२)

(क्रमशः)

दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास जोधपुर में
133 वॉ वार्षिक ऋषि स्मृति सम्मेलन सम्पन्न की प्रमुख झलकियां

Postal Reg. Jodhpur/434/2015-17

Date Of Posting 9,10-10-2016
Date Of Print 5-10-2016

दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर की नव निर्मित यज्ञ शाला का विहंगम दृश्य

सत्वाधिकारी महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास के लिए प्रकाशक व मुद्रक विजयसिंह भाटी द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, महर्षि दयानन्द मार्ग, मोहनपुरा पुलिया के पास जोधपुर (राज.) से प्रकाशित एवं सैनिक प्रिण्टर्स, मकराणा मौहल्ला केरू हाऊस जोधपुर फोन 9829392411 से मुद्रित ।

सम्पादक फोन नं. 0291-2516655